पराग
भाग 2

पराग

भाग 2

कक्षा 10 अ पाठ्यक्रम के लिए हिन्दी की पाठ्यपुस्तक

पराग

भाग 2

कक्षा 10 अ पाठ्यक्रम के लिए हिन्दी की पाठ्यपुस्तक

अनिल विद्यालंकार
शशिकुमार शर्मा
अनिरुद्ध राय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
फरवरी 1990 : माघ 1911

छठा पुनर्मुद्रण
जनवरी 1997 : माघ 1918

PD 120T NSY

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस श्री अरविंद मार्ग नई दिल्ली 110016	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे हेली एक्सटेंशन, बनाशंकरी III इस्टेज बैंगलूर 560085	नवजीवन ट्रस्ट भवन डाकघर नवजीवन अहमदाबाद 380014	सी.डब्ल्यू.सी. कैम्पस 32, बी.टी. रोड, सुखचर 24 परगना 743179

रु. 13.00

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविं मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा श्री इंडस्ट्रीज, बी-116, सेक्टर-; नोएडा 201 301 (यू.पी.) द्वारा मुद्रित।

आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्वावधान में विद्यालय-स्तर पर विभिन्न शैक्षिक विषयों के पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों आदि के निर्माण का कार्य लगभग ढाई दशकों से हो रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा-नीति-1986 के लागू होने के साथ ही ऐसी शिक्षण-सामग्री की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा जो नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो। इस नीति के अनुसार शिक्षा बाल-केन्द्रित होगी और छात्रों के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाएगा। नई शिक्षा-नीति में भारत के राष्ट्रीय जीवन के लिए आवश्यक कुछ महत्त्वपूर्ण मूल्यों को केन्द्रिक शिक्षाक्रम के रूप में स्थान दिया गया है। यह एक दूरगामी शिक्षा नीति है और यदि इसका पालन सही ढंग से किया जाए तो भारत के नव-निर्माण में इससे महत्वपूर्ण योगदान मिल सकता है।

नई शिक्षा योजना की महत्वपूर्ण विशेषता उसकी बाह्य संरचना नहीं है, अपितु वह परियोजना एवं दृष्टिकोण है जिसमें शिक्षा का संबंध राष्ट्रीय विकास के साथ जोड़ने पर बल दिया जाता है। इस दृष्टि से नवीन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में निम्नलिखित सिद्धांतों का विशेष रूप से समावेश किया गया है:

1. ऐसी पाठ्यसामग्री एवं शैक्षिक क्रियाओं का समावेश जिनसे बालकों में राष्ट्रीय लक्ष्यों—जनतांत्रिकता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक न्याय तथा राष्ट्रीय एकता के प्रति चेतना एवं आस्था उत्पन्न हो और उनमें तर्कसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो।

2. पाठ्यचर्या एवं पाठ्यसामग्री भारतीय जीवन- परिस्थितियों तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित हो और उनमें वांछित भावी विकास की दिशा भी परिलक्षित हो।

3. पाठ्यपुस्तकें बच्चों के भावात्मक एवं बौद्धिक उत्कर्ष, चरित्र-निर्माण तथा स्वस्थ मनोवृत्ति के विकास की दृष्टि से प्रेरणादायी सिद्ध हों, उनके द्वारा बच्चों में स्वयं शिक्षा एवं अधिकाधिक ज्ञानार्जन की उत्कंठा जाग्रत हो और वे निर्धारित पाठ्यविषय तक ही सीमित न रहकर विशद् एवं व्यापक अध्ययन के लिए जिज्ञासु तथा तत्पर बने रहें।

4. नई शिक्षा नीति के आधारभूत सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए पाठ्य सामग्री के चयन में केन्द्रिक शिक्षाक्रम से संबंधित विषय सामग्री एवं जीवन-मूल्यों पर विशेष बल हो।

5. सांप्रतिक एवं भावी जगत् को सुखद सुंदर बनाने वाली जीवन परिस्थितियों की ओर संकेत करने वाले पाठों का समावेश किया गया हो।

उपर्युक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए विविध विषयों के पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण की योजना तैयार की गई है। इस कार्य को सभी दृष्टियों से परिपूर्ण एवं प्रामाणिक बनाने के लिए राष्ट्रीय स्तर के विषय-विशेषज्ञों, अधिकारी विद्वानों एवं शिक्षकों का सहयोग प्राप्त किया गया है। इस संदर्भ में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् की हिन्दी समिति के अध्यक्ष, प्रो. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव तथा अन्य सदस्यों के सहयोग के लिए मैं विशेष आभारी हूँ।

परिषद् के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के अध्यक्ष डॉ. अनिल विद्यालंकार (अब अवकाश प्राप्त) और रीडर डॉ. शशिकुमार शर्मा (अब अवकाश प्राप्त) ने विभाग में अपने कार्यकाल के दौरान इस पुस्तक के संपादन का कार्य किया । विभाग के डॉ. अनिरुद्ध राय ने इसका अंतिम प्रारूप तैयार किया तथा बड़े परिश्रम से इसका संपादन किया।

मैं इन सभी सहयोगियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

जिन कृती लेखकों ने अपनी रचनाएँ इस पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति दी है, उनके प्रति हम विशेष रूप से अनुगृहीत हैं।

आशा है, छात्रों की भाषिक तथा साहित्यिक रुचियों के विकास की दृष्टि से यह पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी। इसके परिष्कार की दृष्टि से सुविज्ञजनों द्वारा भेजे गए सुझावों और परामर्शों का हम सदा स्वागत करेंगे।

पी.एल.मल्होत्रा
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में कृपापूर्ण योगदान के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् निम्नलिखित विद्वानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है–

डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, *अध्यक्ष, हिन्दी समिति, केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड,* सुश्री कमल वासुदेव, श्री सुरेन्द्र पाल मित्तल तथा डॉ हरिश्चंद्र, *सदस्य, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड,* श्री निरंजन कुमार सिंह, डॉ. आनंद प्रकाश व्यास, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, डॉ. मान सिंह वर्मा, डॉ. सुधांशु चतुर्वेदी, डॉ. एन. सुंदरम, डॉ. सुवास कुमार, डॉ. सच्चिदानंद सिंह साथी, डॉ. कमल सत्यार्थी डॉ. जयपाल सिंह तरंग, श्री भागीरथ भार्गव, डॉ. (श्रीमती) संतोष माटा, श्री कौस्तुभ पंत, डॉ. श्याम बिहारी राय।

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

हिन्दी गद्य का विकास

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में नवजागरण की चेतना से गद्य की प्रतिष्ठा आरंभ होती है। इसीलिए आधुनिक काल को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गद्यकाल कहा है। इस गद्यकाल की शुरुआत भारतेन्दु-युग (1850-1900) से ही माननी चाहिए। ऐसा मानने का प्रधान कारण यह है कि नए विचारों की अभिव्यक्ति के लिए लेखकों ने खड़ी बोली गद्य में एक नए ढंग एवं नए गद्य रूपों में लिखना शुरू किया। किंतु हिन्दी गद्य की अपनी स्वतंत्र पहचान 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विकसित हुई। इस शताब्दी में भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण की जो लहर देश में फैली थी उसका प्रभाव कला, संस्कृति एवं साहित्य के सभी क्षेत्रों पर पड़ा। नवीन विचार-आंदोलनों की चेतना ने जनमानस में नवीन विचारों का विस्फोट किया। इसी चेतना को अभिव्यक्ति देने के माध्यम के रूप में हिन्दी गद्य-साहित्य का विकास हुआ।

खड़ी बोली में गद्य की शुरुआत उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही हो गई थी। सन् 1802 ई. में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। यहाँ हिन्दुस्तानी का जो विभाग गिलक्राइस्ट की देख-रेख में खुला उसमें हिन्दी और उर्दू को भी स्थान मिला। इसी फोर्ट विलियम कॉलेज में भाखा मुंशी के पद पर कार्य करते हुए लल्लू लाल जी तथा सदल मिश्र ने क्रमशः **प्रेमसागर** तथा **नासिकेतोपाख्यान** नामक ग्रंथों की रचना की। इन ग्रंथों की भाषा पर यद्यपि ब्रज-भाषा की छाप है तथापि खड़ी बोली गद्य के संस्कार प्रबलता से मिलते हैं। उसी समय स्वतंत्र रूप से हिन्दी गद्य लिखने वालों में मुंशी सदासुखलाल तथा इंशा अल्ला खाँ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सदासुखलाल का **सुख सागर** और इंशा अल्ला खाँ की **रानी केतकी की कहानी** में तंत्कालीन गद्य के अच्छे

उदाहरण मिलते हैं।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक नवजागरण के इसी प्रकाश में समाज सुधारक दयानंद सरस्वती ने (जिनकी मातृभाषा गुजराती थी) जनहित को ध्यान में रखकर हिन्दी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उन्होंने अपने संस्कृत में लिखित ग्रंथों का स्वयं हिन्दी में अनुवाद कर डाला और अपना लोकप्रसिद्ध ग्रंथ **सत्यार्थ प्रकाश** हिन्दी में ही लिखा। इस ग्रंथ ने उत्तरी भारत के अनेक प्रबुद्ध लोगों को हिन्दी गद्य लिखने को प्रेरित किया। नवजागरण की इसी चेतना को भारतेन्दु ने हिन्दी भाषा और हिन्दी गद्य से जोड़ दिया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक साथ कई गद्य विधाओं का प्रवर्तन किया। इनके गद्य में नाटक की केन्द्रीय स्थिति बनी। नवजागरण की एक माँग यह भी थी कि पूरे समाज का आधुनिक रूप में गठन किया जाए और यह कार्य साहित्य के क्षेत्र में पद्य से ज़्यादा गद्य ही कर सकता था।

नवजागरण की व्यापक सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिए नाटक, उपन्यास, निबंध, कहानी, संस्मरण, जीवनी साहित्य, पत्र-पत्रिकाएँ आदि ही उपयुक्त माध्यम हो सकते थे। कहना न होगा कि भारतेन्दु-युग के लेखक पं. बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, उपाध्याय बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन, कार्तिक प्रसाद खत्री, ठाकुर जगमोहन सिंह, किशोरी लाल गोस्वामी आदि सभी ने नवीन गद्य-विधाओं को विकसित होने में सहयोग दिया। भारतीय जनता की मुक्ति-चेतना का नया रूप-रंग साम्राज्यवाद-विरोधी स्वर लिए था। इसी स्वर की प्रखर अभिव्यक्ति इस युग की पत्रिकाओं में हुई। हिन्दी गद्य की वैचारिक शक्ति से ब्रिटिश साम्राज्यवाद विरोधी संग्राम भारतेन्दु ने **कवि वचन सुधा**, **हरिश्चंद्र मैगजीन**, **हरिश्चंद्र चंद्रिका**, पं. बालकृष्ण भट्ट ने **हिन्दी प्रदीप** प्रतापनारायण मिश्र ने **ब्राह्मण** तथा प्रेमघन जी ने **आनंद कादंबिनी** जैसी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से खुल कर लड़ा। हिन्दी गद्य के विकास और प्रसार में भारतेन्दु-युग की पत्र पत्रिकाओं का योगदान बहुत अधिक है। इन पत्रों में नाटक, आलोचना, निबंध, संस्मरण, जीवनी आदि निकलते रहे। इस गद्य ने चाहे वह **अंधेर नगरी** नाटक हो या श्री निवास दास का उपन्यास **परीक्षा गुरु** हो या बालकृष्ण भट्ट के निबंध **आलोचना** हो या राधा कृष्ण दास की संतों, कवियों पर

लिखी गई जीवनियाँ संस्मरण हों जनता में नए विचारों के बीज बोए। इस प्रकार के साहित्य ने देश-भक्ति, स्वदेशाभिमान, स्वभाषाभिमान तथा स्वदेशी की भावनाओं को प्रकट किया।

हिन्दी गद्य के विकास में अनुवादों की भूमिका को भी कम करके न आँकना चाहिए। स्वयं भारतेन्दु ने बँगला, मराठी, संस्कृत, अंग्रेजी से प्रचुर अनुवाद- कार्य किया। ठाकुर जगमोहन सिंह, काशीनाथ खत्री, बालकृष्ण भट्ट भी अनुवाद के क्षेत्र में महत्त्व का कार्य करते रहे। कहना न होगा कि भारतेन्दु-युग का गद्य नए विषयों, नए विचारों, नई विधाओं और शैलियों को लेकर आया था। लोक-जीवन की समस्याओं से जुड़ने की चिंता, नए ज्ञान विज्ञान को लाने का प्रयत्न तथा जनता में फैले रूढ़िवाद को तोड़कर लोक-जागरण लाने का संकल्प इस काल के गद्य की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है।

हिन्दी गद्य में भाव और भाषा दोनों क्षेत्रों में परिष्कार और उजला संस्कार द्विवेदी- युग के गद्य ने दिया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका तथा बालमुकुंद गुप्त ने भारत मित्र से हिन्दी की सर्वांग उन्नति का बीड़ा उठाया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से जब उनके एक मित्र ने पूछा, आपकी राय में अच्छी हिन्दी कौन लिखता है? तब उन्होंने उत्तर दिया, अच्छी हिन्दी बस एक व्यक्ति लिखता है— बालमुकुंद गुप्त। गुप्त जी लंबे समय तक प्रतापनारायण मिश्र के सहयोगी थे और उन्होंने **भारत मित्र** में आचार्य द्विवेदी की रचनाएँ छापी थीं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा बालमुकुंद गुप्त उच्चकोटि के पत्रकार, निबंधकार, सुलझे जीवनी-लेखक, आत्मकथा-लेखक तथा हिन्दी भाषा के अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करने वाले लेखक थे। द्विवेदी युग के गद्य ने जागरण और सुधार युग की मुक्ति- चेतना को निर्भीकता से प्रस्तुत किया। आलोचना, निबंध तथा साहित्य के इतिहास-लेखन में यह कार्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू श्यामसुंदर दास आदि ने किया। भाषा सुधार तथा ज्ञान-विज्ञान के अनेक क्षेत्रों का परिचय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कराया। कहानी तथा उपन्यास के क्षेत्र में इस युग ने प्रेमचंद को जन्म दिया। प्रेमचंद के जन्म से हिन्दी कथा साहित्य का पुराना मनोरंजन प्रधान मुहावरा ही बदल गया। इन्होंने समय समाज की राजनीति को समझते हुए **सवासेर गेहूँ, पूस की रात, मंत्र** जैसी लगभग

तीन सौ कहानियाँ तथा **निर्मला, सेवा सदन, कर्मभूमि, गबन, रंगभूमि** और **गोदान** जैसे उपन्यास लिखकर जनता को वास्तविक समस्याओं से परिचित कराया। आ. द्विवेदी, आ. रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद ने ऐसा सशक्त गद्य लिखा है कि इस गद्य की सर्जनात्मकता ने अचानक हिन्दी गद्य को प्रौढ़ कर दिया। इस काल के अन्य गद्य लेखकों में हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, सरदार पूर्णसिंह, विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', सुदर्शन, माधव शुक्ल, गणेश शंकर विद्यार्थी तथा माखन लाल चतुर्वेदी के नाम अग्रगण्य हैं। **प्रभा, प्रताप** तथा **कर्मवीर** के विविधतापरक लेखन ने हिन्दी गद्य में क्रांति उपस्थित कर दी। भाषा में गद्य के आरंभिक प्रयोग निबंध को जन्म देते हैं, क्योंकि विचार और शैली विधान की विविध मुक्त संभावनाएँ यहाँ अधिक हैं। भारतेन्दु-युग ने इस विधा को जन्म दिया और इसे प्रौढ़ता-पुष्टता द्विवेदी-युग ने दी।

छायावाद-युग के समानांतर निबंध और आलोचना के क्षेत्र में प्रखर लेखन रामचंद्र शुक्ल ने किया है। शुक्ल जी ने दो तरह के निबंध लिखे- **श्रद्धा, भक्ति** जैसे भावों-मनोविकारों से संबंधित निबंध और **कविता क्या है** जैसे सैद्धांतिक आलोचना के निबंध। बाबू गुलाबराय, आ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, कृष्णशंकर शुक्ल, लक्ष्मी नारायण सुधांशु और स्वयं सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने निबंधों से हिन्दी गद्य को ऊँचाई पर पहुँचाया। जयशंकर प्रसाद ने कहानियों तथा उपन्यासों जैसे **आकाशदीप, तितली** से कथा साहित्य को भाव के धरातल पर समृद्ध किया। **इंदु** पत्रिका तथा **काव्य और कला तथा अन्य निबंध** जैसी वैचारिक कृति, **स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी**, जैसे नाटकों से हिन्दी गद्य में सूक्ष्मता और लालित्य दोनों का समावेश किया। निराला जी ने **लिली** जैसे उपन्यास, **कुल्ली भाट** जैसी जीवनी, **बिल्लेसुर बकरिहा** जैसे संस्मरण लिखकर हिन्दी गद्य -विधाओं की नई संभावनाओं का पथ प्रशस्त किया। महादेवी वर्मा ने रेखाचित्रों के क्षेत्र में **पथ के साथी, स्मृति की रेखाएँ, अतीत के चलचित्र, शृंखला की कड़ियाँ** तथा अनेक निबंधों से हिन्दी गद्य को एक नया रूप और कलेवर प्रदान किया। संभ्रांत मानव को हटाकर सामान्य मानव की महत्त्व-प्रतिष्ठा प्रेमचंद की ही भाँति महादेवी ने अपने गद्य में कर डाली। कहना आवश्यक नहीं कि छायावाद

के रचनाकारों की गद्य- विधाओं के क्षेत्र में उपलब्धियाँ एक अपूर्व गौरव का अहसास कराती हैं।

आलोचना के क्षेत्र में छायावाद-युग ने आ. नंददुलारे वाजपेयी, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, शांतिप्रिय द्विवेदी और डा. नगेन्द्र जैसे प्रतिभाशाली आलोचकों को तराश कर उपस्थित किया। इन आलोचकों ने अपने निबंधों से हिन्दी गद्य को प्रांजल बनाया है। आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के ललित और शोधपरक निबंधों तथा **बाण भट्ट की आत्मकथा** जैसी औपन्यासिक कृतियों ने हिन्दी गद्य को इतना समृद्ध बनाया है कि देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है।

छायावादोत्तर-युग में हिन्दी गद्य-विधाओं की नवीनता और प्रौढ़ता का एक विशाल परिदृश्य है जिसकी कल्पना सहज संभव नहीं है। कथा साहित्य के क्षेत्र में जैनेन्द्र कुमार, स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय', इलाचंद्र जोशी, यशपाल, अमृतलाल नागर जैसी अमर प्रतिभाएँ सामने आती हैं। जैनेंद्र का **त्यागपत्र**, अज्ञेय का **शेखर एक जीवनी**, यशपाल का **झूठा सच**, इलाचंद्र जोशी का **संन्यासी**, अमृतलाल नागर का **मानस का हंस**, इस क्षेत्र की उपलब्धियाँ हैं। नयी कहानी आंदोलन में कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कामतानाथ, कृष्णा सोबती , विष्णु प्रभाकर, फणीश्वर नाथ 'रेणु', शिवप्रसाद सिंह, ज्ञान रंजन, शैलेश मटियानी, जैसी सैकड़ों प्रतिभाएँ एक साथ दिखाई देती हैं। हिन्दी का कथा साहित्य गद्य की गरिमा का नया इतिहास बन जाता है।

नाटक के क्षेत्र में मोहन राकेश, उपेन्द्रनाथ अश्क, जगदीशचंद्र माथुर, रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शंकर शेष जैसी प्रतिभाओं के आने से हिन्दी का आधुनिक नाटक और रंगमंच गौरवान्वित हुआ है। नाट्य-समीक्षा के क्षेत्र में नेमिचंद जैन का उदय होता है और वे नए नाट्य चिंतन को दिशा और दृष्टि देते हैं। एकांकी नाटक के क्षेत्र में नए प्रयोग हुए हैं। रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, भुवनेश्वर, जगदीशचंद्र माथुर आदि के एकांकी अभिनय एवं कला की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

इधर आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण और रेखाचित्र के नए क्षेत्र का विस्तार हुआ है। इस क्षेत्र में राहुल सांकृत्यायन, विष्णु प्रभाकर, अश्क, रामवृक्ष बेनीपुरी, प्रभाकर माचवे, बनारसीदास चतुर्वेदी जैसी श्रेष्ठ

रचनात्मक प्रतिभाएँ दिखाई देती है। निबंध की एक नवीन विधा **ललित निबंध** के रूप में विकसित हुई है। इस विधा का विकास आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, रामनारायण मिश्र, रमेशचंद्र शाह आदि लेखकों ने किया है। निबंधों की इस ललित शैली में काव्यात्मकता और सरसता दोनों का आनंद आता है। हिन्दी समीक्षा पर मार्क्स और फ्रायड के चिंतन एवं विचारों का भी प्रभाव बढ़ा है। फलतः नई समीक्षा पद्धतियाँ विकसित हुई हैं। इस क्षेत्र में प्रकाशचंद गुप्त, गजानन माधव मुक्तिबोध, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. देवराज आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी गद्य की नवीन विधाओं में पत्र-साहित्य, यात्रा-वृत्तांत, डायरी, साक्षात्कार (इंटरव्यू), रिपोर्ताज आदि निरंतर विकास कर रही हैं। राहुल जी के **घुमक्कड़ शास्त्र** ने यात्रा-वृत्त लेखन को नवीन दिशा दी है। **पत्र हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने पत्र-साहित्य की एक खास पहचान बनाई है। रिपोर्ताज के क्षेत्र में रांगेय राघव के **तूफानों के बीच** तथा कन्हैयालाल नंदन के **जरिया-नजरिया** ने परती जमीन तोड़ी है। इधर मोहन राकेश की **डायरी** ने डायरी-विधा को ऊँचाईयों पर पहुँचाया है।

हिन्दी गद्य के इस वैविध्यपूर्ण समृद्ध विकास को देखकर कहा जा सकता है कि हिन्दी गद्य का विकास अनेक दिशाओं में हो रहा है और इसकी गतिपरक संभावनाएँ काफी आश्वस्त करती हैं।

विषय-सूची

नोट - सियाराम शरण गुप्त की कहानी कोटर और कुटीर तथा कृष्णा सोबती की कहानी सिक्का बदल गया तारांकित पाठ हैं ।

बालकृष्ण भट्ट
(1844-1914)

पंडित बालकृष्ण भट्ट का जन्म प्रयाग में हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा केवल स्कूल तक अवश्य पाई किंतु भट्ट जी संस्कृत और हिन्दी के विद्वान थे तथा उर्दू और अंग्रेजी का भी उन्हें व्यावहारिक ज्ञान था। उन्होंने अनेक वर्षों तक हिन्दी तथा संस्कृत का अध्यापन किया। उनका साहित्यिक जीवन **हिन्दी प्रदीप** मासिक पत्र के संपादक रूप में विकसित हुआ। वे लगन, त्याग और अध्यवसाय से अनेक व्रर्षों तक इस पत्र को निकालते रहे। अनेक वर्षों तक वे **हिन्दी शब्द सागर** के सहायक संपादक भी रहे।

भारतेन्दु मंडल में भट्ट जी का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वे हिन्दी निबंध-परंपरा का सूत्रपात करने वालों में से एक थे। **साहित्य-सुमन** तथा **निबंधावली** (दो भाग) में उनके निबंध संगृहीत हैं। ये निबंध सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, नैतिक आदि अनेक विषयों पर लिखे गए हैं। कुछ निबंध सरल और हास्य-व्यंग्यपूर्ण हैं तो कुछ गंभीर और विचारपूर्ण। निबंधों पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप सर्वत्र विद्यमान है।

भट्ट जी के निबंधों में तीन शैलियाँ मिलती हैं। एक संस्कृत प्रधान है, दूसरी में उर्दू शब्दों के प्रचुर प्रयोग की ओर झुकाव है, और तीसरी शैली में अंग्रेजी तक के शब्दों को मुक्त भाव से ग्रहण किया गया है। संस्कृत प्रधान शैली में अलंकारों की अधिकता है। उर्दू मिश्रित शैली में साधारण तथा व्यावहारिक विषयों के लेख हैं। मुहावरों के प्रयोग की ओर उनकी विशेष रुचि थी। गुन, मिठास, परख, तरुनाई ऐसे प्रचलित शब्दों को वे स्वच्छंदता से ग्रहण कर लेते थे। उनके निबंधों में हिन्दी-गद्य के प्रारंभिक रूप के दर्शन होते हैं।

प्रस्तुत निबंध में लेखक ने बड़ी जीवंत शैली में बातचीत को कला मानते हुए उसके विविध रूपों का वर्णन किया है और उसे वक्तृता तथा भाषण से भिन्न ठहराया है। भाषा में उर्दू-फ़ारसी के शब्दों का खुल कर प्रयोग हुआ है तथा उसपर प्रांतीयता की छाप भी स्पष्ट है।

1. बातचीत

इसे तो सभी स्वीकार करेंगे कि अनेक प्रकार की शक्तियाँ जो वरदान की भांति ईश्वर ने मनुष्यों को दी हैं, उनमें वाक्शक्ति भी एक है। यदि मनुष्य की और इंद्रियाँ अपनी-अपनी शक्तियों से अविकल रहतीं और वाक्शक्ति उनमें न होती तो, हम नहीं जानते, इस गूँगी सृष्टि का क्या हाल होता। सब लोग लुंज-पुंज से हो मानो एक कोने में बैठा दिए गए होते और जो कुछ सुख-दुख का अनुभव हम अपनी दूसरी-दूसरी इंद्रियों के द्वारा करते, उसे अवाक् होने के कारण आपस में एक दूसरों से न कह-सुन सकते। अब इस वाक्शक्ति के अनेक फायदों में स्पीच वक्तृता और बातचीत दोनों हैं किंतु स्पीच से बातचीत का कुछ ढंग ही निराला है। बातचीत में वक्तृता को नाज नखरा जाहिर करने का मौका नहीं दिया जाता है कि वह एक बड़े अंदाज से गिन-गिनकर पाँव रखता हुआ पुलपिट पर जा खड़ा हो और पुण्याहवाचन या नांदीपाठ की भांति घड़ियों तक साहबाने मजलिस, चेयरमैन, लेडीज एण्ड जैण्टलमेन की बहुत-सी स्तुति कर-कराय तब किसी तरह वक्तृता का आरंभ किया गया। जहाँ कोई मर्म या नोक की कोई चुटीली बात वक्ता महोदय के मुख से निकली कि करतल ध्वनि से कमरा गूँज उठा। इसलिए वक्तृता को खामखाह ढूँढ़कर कोई ऐसा मौका अपनी वक्तृता में लाना ही पड़ता है जिसमें करतल ध्वनि अवश्य हो। वहीं, हमारी साधारण बातचीत का कुछ ऐसा घरेलू ढंग है कि उसमें न करतल ध्वनि का कोई मौका है न लोगों को कहकहे उड़ाने की कोई बात उसमें रहती है। हम तुम दो आदमी प्रेमपूर्वक संलाप कर रहे हैं। कोई चुटीली बात आ गई, हँस पड़े तो मुसकराहट से होंठों का केवल फरक उठना ही इस हँसी की अंतिम सीमा है। स्पीच का उद्देश्य अपने सुनने वालों के मन में जोश और

उत्साह पैदा कर देना है। घरेलू बातचीत मन रमाने का एक ढंग है, इसमें स्पीच की वह संजीदगी बेकदर हो धक्के खाती फिरती है।

जहाँ आदमी को अपनी ज़िंदगी मजेदार बनाने के लिए खाने-पीने, चलने-फिरने आदि की जरूरत है वहाँ बातचीत की भी हमको अत्यंत आवश्यकता है। जो कुछ मवाद या धुआँ जमा रहता है वह सब बातचीत के जरिए भाप बन बाहर निकल पड़ता है, चित्त हलका और स्वच्छ हो परम आनंद में मग्न हो जाता है। बातचीत का भी एक खास तरह का मजा होता है। जिनको बात करने की लत पड़ जाती है वे इसके पीछे खाना-पीना तक छोड़ देते हैं, अपना बड़ा हर्ज कर देना उन्हें पसंद आता है, पर बातचीत का मज़ा नहीं खोना चाहते। राबिनसन क्रूसो का किस्सा, बहुधा लोगों ने पढ़ा होगा, जिसे सोलह वर्ष तक मुनष्य का मुख देखने को भी नहीं मिला। कुत्ता, बिल्ली आदि जानवरों के बीच रहा किया, सोलह वर्ष के उपरांत जब उसने फ्राइडे के मुख से एक बात सुनी, यद्यपि इसने अपनी जंगली बोली में कहा था, उस समय राबिनसन को ऐसा आनंद हुआ मानो इसने नए सिरे से फिर से आदमी का चोला पाया। इससे सिद्ध होता है मनुष्य की वाक्शक्ति में कहाँ तक लुभा लेने की ताकत है। जिनसे केवल पत्र-व्यवहार है, कभी एक बार भी साक्षात्कार नहीं हुआ, उन्हें अपने प्रेमी से कितनी लालसा बात करने की रहती है। अपना आभ्यंतरिक भाव दूसरे को प्रकट करना और उसका आशय आप ग्रहण कर लेना, केवल शब्दों ही के द्वारा हो सकता है।

बेन जानसन का यह कहना कि "बोलने से ही मुनष्य के रूप का साक्षात्कार होता है" बहुत ही उचित बोध होता है। इस बातचीत की सीमा दो से लेकर वहाँ तक रखी जा सकती है जितनों की जमात, मीटिंग या सभा न समझ ली जाए। एडिसन का मत है असल बातचीत सिर्फ दो में हो सकती है, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि जब दो आदमी होते हैं तभी अपना दिल दूसरे के सामने खोलते हैं। जब तीन हुए तब वह दो की बात कोसों दूर गई।

दूसरे यह है कि किसी तीसरे आदमी के आते ही, या दोनों हिजाब में आय, अपनी बातचीत से निरस्त हो बैठेंगे या उसे निपट मूर्ख और अज्ञानी समझ बनाने लगेंगे। जैसे गरम दूध और ठंडे पानी के दो बरतन पास-पास सटा कर रखे जाएँ तो एक का असर दूसरे में पहुँचता है,

अर्थात् दूध ठंडा हो जाता है, और पानी गरम। वैसा ही दो आदमी पास-पास बैठे हों तो एक का गुप्त असर दूसरे पर पहुँच जाता है। चाहे एक दूसरे को देखें भी नहीं, तब बोलने को कौन कहे, पर एक का दूसरे पर असर होना शुरू हो जाता है। एक के शरीर की विद्युत दूसरे में प्रवेश करने लगती है। जब पास बैठने का इतना असर होता है तब बातचीत में कितना अधिक असर होगा, इसे कौन न स्वीकार करेगा। अस्तु, अब इस बात को तीन आदमियों के संगम में देखना चाहिए मानो एक त्रिकोण-सा बन जाता है। तीनों के चित्त मानो तीन कोण हैं, और तीनों की मनोवृत्ति के प्रसरण की धारा मानो उस त्रिकोण की तीन रेखाएँ हैं। गुपचुप असर तो उन तीनों में परस्पर होता ही है जो बातचीत तीनों में की गई वह मानो अँगूठी में नग-सा जड़ जाती है। उपरांत जब चार आदमी हुए तब बेतकल्लुफ़ी का बिल्कुल स्थान नहीं रहता। खुल के बातें न होंगी, जो कुछ बातचीत की जाएगी वह फ़ार्मेलिटी, गौरव, संजीदगी के लच्छे में सनी हुई। चार से अधिक की बातचीत केवल राम रमौवल कहलाएगी, उसे हम संलाप नहीं कह सकते।

इस बातचीत के अनेक भेद हैं। दो बुड्ढों की बातचीत प्रायः ज़माने की शिकायत पर हुआ करती है, बाबा आदम के समय का ऐसा दास्तान शुरू करते हैं जिनमें चार सच तो दस झूठ। एक बार उनकी बातचीत का घोड़ा छूट जाना चाहिए, पहरों बीत जाने पर भी अन्त न होगा। प्रायः अंग्रेज़ी राज्य, परदेश और पुराने समय की बुरी से बुरी रीतिनीति का अनुमोदन और इस समय के सब भाँति लायक नौजवान की निंदा उनकी बातचीत का मुख्य प्रकरण होगा। अब इसके विपरीत नौजवानों की बातचीत का कुछ तर्ज़ ही निराला है। जोश-उत्साह, नई उमंग, नया हौसला आदि मुख्य प्रकरण उनकी बातचीत का होगा। पढ़े लिखे हुए तो शेक्सपियर, मिलटन, मिल और स्पेंसर उनके जीभ के आगे नाचा करेंगे, अपनी लियाकत के नशे में चूर-चूर हम चुनीं दीगरे नेस्त। अक्खड़ कुश्तीबाज़ हुए तो अपनी पहलवानी और अक्खडपन की चर्चा छेड़ेंगे।

अर्द्धजरती स्त्रियों की बातचीत का मुख्य प्रकरण, बहू-बेटी वाली हुई तो, अपनी-अपनी बहुओं या बेटी का गिला-शिकवा होगा या बिरादराने का कोई ऐसा रामरसरा छेड़ बैठेंगी कि बात करते-करते अंत

में खोढ़े दाँत निकाल-निकाल लड़ने लगेंगी। लड़कों की बातचीत में खिलाड़ी हुए तो अपनी-अपनी आवारगी की तारीफ करने के बाद कोई ऐसी सलाह गाठेंगे जिसमें उनको अपनी शैतानी जाहिर करने का पूरा मौका मिले। स्कूल के लड़कों की बातचीत का उद्देश्य अपने उस्ताद की शिकायत या तारीफ या अपने सहपाठियों में किसी के गुन-ऐगुन का कथोपकथन होता है। पढ़ने में तेज़ हुआ तो कभी अपने मुकाबले दूसरे को कैफ़ियत न देगा, सुस्त और बोदा हुआ तो दबी बिल्ली-सा स्कूल भर को अपना गुरु ही मानेगा। अलावे इसके बातचीत की और बहुत-सी किस्में हैं। राज-काज की बात, व्यापार-संबंधी बातचीत, दो मित्रों में प्रेमालाप इत्यादि। हमारे देश में कुछ जाति के लोगों में बतकही होती, लड़की-लड़के वाले की ओर से एक-एक आदमी बिचवई होकर दोनों के विवाह संबंध की कुछ बातचीत करते हैं, उस दिन से बिरादरी वालों को जाहिर कर दिया जाता है कि अमुक की लड़की से अमुक के लड़के के साथ विवाह पक्का हो गया और यह रस्म बड़े उत्साह के साथ की जाती है। इस तरह बात करने के अनेक और ढंग हैं।

यूरोप के लोगों में बात करने का हुनर है, 'आर्ट ऑफ कनवरसेशन' यहाँ तक बढ़ा है कि स्पीच और लेख दोनों इसे नहीं पाते। इसकी पूर्ण शोभा काव्यकला-प्रवीण विद्वत्मंडली में है। ऐसे चतुराई के प्रसंग छेड़े जाते हैं कि जिन्हें सुन कान को अद्भुत सुख मिलता है। सहृदय गोष्ठी इसी का नाम है। सहृदय गोष्ठी की बातचीत की यही तारीफ है कि बात करने वालों की लियाकत अथवा पांडित्य का अभिमान या कपट कहीं एक बात में न प्रगट हो वरन् जितने क्रम रसाभास पैदा करने वाले हों, संबों को बरकाते हुए चतुर सयाने अपनी बातचीत का उपक्रम रखते हैं जो हमारे आधुनिक शुष्क पंडितों की बातचीत में, जिसे शास्त्रार्थ कहते हैं, कभी आएगा ही नहीं। मुर्ग और बटेर की लड़ाइयों की झपटा-झपटी के समान जिनकी नीरस काँव-काँव में सरस संलाप की तो चर्चा ही चलाना व्यर्थ है, वरन् कपट और एक दूसरे को अपने पांडित्य के प्रकाश से वाद में परास्त करने का संघर्ष आदि रसाभास की सामग्री वहाँ बहुतायत के साथ आपको मिलेगी। घंटे भर तक काँव-काँव करते रहेंगे, तय कुछ न होगा। पचीस वर्ष के ऊपर वालों की बातचीत अवश्य ही कुछ न कुछ सारगर्भित होगी, अनुभव और

दूरंदेशी से खाली न होगी और पचीस से नीचे वालों की बातचीत में यद्यपि अनुभव, दूरदर्शिता और गौरव नहीं पाया जाता पर इसमें एक प्रकार का ऐसा दिल बहलाया और ताज़गी रहती है कि जिसकी मिठास उससे दस गुना अधिक चढ़ी-बढ़ी है।

यहाँ तक हमने बाहरी बातचीत का हाल लिखा जिसमें दूसरे फ़रीक के होने की बहुत ही आवश्यकता है। बिना किसी दूसरे मनुष्य के हुए जो किसी तरह संभव नहीं है और जो दो ही तरह से हो सकती है या तो कोई हमारे यहाँ कृपा करे या हमीं जाकर दूसरे को सर्फ़राज़ करें। पर यह सब तो दुनियादारी है जिसमें कभी-कभी रसाभास होते देर नहीं लगती, क्योंकि जो महाशय अपने यहाँ पधारें उनकी पूरी दिलजोई न हो सकी तो शिष्टाचार में त्रुटि हुई। अगर हमीं उनके यहाँ गए, पहले तो बिना बुलाए जाना ही अनादर का मूल है, और जाने पर अपने मन माफ़िक बर्ताव न किया गया तो मानो एक दूसरे प्रकार का नया घाव हुआ। इसलिए सबसे उत्तम प्रकार बातचीत करने का हम यही समझते हैं कि हम वह शक्ति अपने में पैदा कर सकें कि अपने आप बात कर लिया करें। हमारी भीतरी मनोवृत्ति जो प्रतिक्षण नए-नए रंग दिखलाया करती है और जो बाह्य प्रपंचात्मक संसार का एक बड़ा भारी आईना है जिसमें जैसी चाहो वैसी सूरत देख लेना कुछ दुर्घट बात नहीं है और जो एक ऐसा चमनिस्तान है जिसमें हर किस्म के बेल-बूटे खिले हुए हैं। इस चमनिस्तान की सैर क्या कम दिल बहलाव है? मित्रों का प्रेमालाप कभी इसकी सोलहवीं कला तक भी पहुँच सकता है ? इसी सैर का नाम ध्यान या मनोयोग या चित्त का एकाग्र करना है जिसका साधन एक दो दिन का काम नहीं वरन् साल दो साल के अभ्यास के उपरांत यदि हम थोड़ा भी अपनी मनोवृत्ति स्थिर कर अवाक् हो अपने मन के साथ बातचीत कर सकें तो मानो अति भाग्य है। एक वाक्शक्ति मात्र के दमन से न जानिए कितने प्रकार का दमन हो गया। हमारी जिह्वा जो कतरनी के समान सदा स्वच्छंद चला करती है उसे यदि हमने दबाकर अपने काबू में कर लिया तो क्रोधादिक बड़े-बड़े अजेय शत्रुओं को बिना प्रयास के जीत, अपने वश में कर डाला। इसलिए अवाक् रह अपने आप बातचीत करने का यह साधन यावत् साधन का मूल है, शांति का परम पूज्य मंदिर है, परमार्थ का एक मात्र सोपान है।

प्रश्न-अभ्यास

1. वाक् शक्ति ने मानव जीवन को क्या वरदान प्रदान किए ?
2. बातचीत की कला के क्या लक्षण हैं ?
3. सुहृदय गोष्ठी में बातचीत किस प्रकार की होनी चाहिए ?
4. मन के साथ बातचीत करने से लेखक का क्या तात्पर्य है ?
5. 'भीतरी मनोवृत्ति' को लेखक ने (क) आईना और (ख) चमनिस्तान क्यों कहा है ?
6. बातचीत और भाषण कला के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
7. निबंध को पढ़कर ऐसे स्थलों का निर्देश कीजिए जहाँ लेखक ने
   - (क) हास्य की सामग्री प्रस्तुत की है,
   - (ख) शब्दों द्वारा चित्र अंकित किए हैं, और
   - (ग) गंभीरतापूर्वक विषय का प्रतिपादन किया है।
8. इस निबंध से हिन्दी-गद्य के पुराने प्रयोग वाले वाक्यों का चयन कीजिए और उनके आधुनिक रूप लिखिए।
9. निम्नलिखित वाक्यों की रचना देखिए और इन्हें शुद्ध रूप में लिखिए।
   - (क) सबलोग लुंज-पुंज से हो मानो एक कोने में बैठा दिए गए होते।
   - (ख) लेडीज एण्ड जैण्टलमेन की बहुत सी स्तुति कर-कराये तब किसी तरह वक्तृता का आरंभ किया गया।
   - (ग) कुत्ता, बिल्ली आदि जानवरों के बीच रहा किया।
   - (घ) या दोनों हिजाव में आयें, अपनी बातचीत में निरस्त हो बैठेंगे।
   - (ङ) जैसे ही दो आदमी पास-पास बैठेंगे या उसे निपट मूर्ख और अज्ञानी समझ बनाने लगेंगे।

वियोगी हरि
(1896-1988)

वियोगी हरि का जन्म छतरपुर (मध्य प्रदेश) में हुआ। उनका मूल नाम हरिप्रसाद द्विवेदी था। बचपन में ही पिता की असामयिक मृत्यु हो जाने के कारण उनका पालन-पोषण ननिहाल में हुआ। उनकी हिन्दी और संस्कृत की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। 1915 ई. में उन्होंने छतरपुर के हाईस्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की।

वियोगी हरि कुछ समय तक हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के प्रबंध संचालन में संलग्न रहे और उन्होंने **सम्मेलन पत्रिका** का भी संपादन किया। 1932 ई. में वे गांधी जी के संपर्क में आए और उनसे प्रभावित हो कर उन्होंने सार्वजनिक सेवा विशेषतः **भूदान आंदोलन**, **भारत सेवक समाज**, **हरिजन सेवा संघ**, **गांधी सेवा संघ**, हरिजन तथा दलित वर्ग के उद्धार एवं कल्याण से संबंधित कार्य को अपने जीवन का व्रत बना लिया। इस जन सेवा के साथ-साथ साहित्य का सृजन भी वे निरंतर करते रहे।

वियोगी हरि ने पचास से अधिक ग्रंथों का सृजन किया है, जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं:

प्रेम शतक, **प्रेमांजलि**, **वीणा**, **प्रेम पथिक**, **मेवाड़ केसरी**, **वीरसतसई** (काव्य), **तरंगी**, **अंतर्नाद**, **प्रार्थना**, **श्रद्धाकण**, **पगली** (गद्यकाव्य), **वीरहरदौल**, **छद्मयोगिनी** (नाटक), **मेरा जीवन प्रवाह** (आत्मकथा), इनके अतिरिक्त उन्होंने अनेक ग्रंथों का संपादन, प्राचीन कविताओं का संग्रह तथा संतों की वाणियों का संकलन भी किया है। कुछ बालोपयोगी पुस्तकें तथा महापुरुषों की जीवनियाँ भी लिखी हैं।

ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों में ही उन्होंने साहित्य रचना की

है। **भावना, अंतर्नाद** तथा **श्रद्धाकण** में उनकी भावात्मक शैली के दर्शन होते हैं तथा दार्शनिक और सामाजिक विषयों के निबंधों में गंभीर तथा विचारात्मक शैली भी मिलती है। मधुर शब्दावली एवं रागात्मक व्यंजना उनके निबन्धों की प्रमुख विशेषता है।

विश्व मंदिर निबंध उनकी पुस्तक **उद्यान** से लिया गया है। इस निबंध में लेखक ने संपूर्ण विश्व को परमेश्वर का एक महामंदिर मान लेने की कल्पना की है और सर्वधर्म समभाव का आदर्श प्रस्तुत किया है जिसमें बैठकर सभी विश्व-जन सबके मनोभावों की रक्षा कर सकेंगे, सबको सत्य, प्रेम और करुणा का भाव दे सकेंगे और **वसुधैव कुटुम्बकम्** की पावन धारणा को साकार करेंगे।

2. विश्व-मंदिर

परमेश्वर का यह समस्त विश्व ही महामंदिर है। इतना सारा यह पसारा उसी घट घट-व्यापी प्रभु का घर है, उसी लामकाँ का मकान है। पहले उस मनमोहन को अपने अंदर के मंदिर में दिलभर देख लो, फिर दुनिया के एक-एक जर्रे में उस प्यारे को खोजते चलो। सर्वत्र उसी प्रभु का सुंदर मंदिर मिलेगा, जहाँ-तहाँ उसी का सलोना घर दिखेगा। तब अविद्या की अँधेरी रात बीत गई होगी। प्रेम के आलोक में तब हर कहीं भगवान के मंदिर-ही-मंदिर दिखाई देंगे। यह बहस ही न रहेगी कि उस राम का वास इस घर में है या उसमें। हमारी आँखों में लगन की सच्ची पीर होगी, तो उसका नूर हर सूरत में नजर आएगा, कोने-कोने से साँवले गोपाल की मोहिनी बाँसुरी सुनाई देगी। हाँ, ऐसा ही होगा, बस आँखों पर से मजहबी तअस्सुब का चश्मा उतारने भर की देर है।

यों तो ऐसा सुंदर मंदिर कोई भी भावुक भक्त एक आनंदमयी प्रेमकल्पना के सहारे अपने हृदय-स्थल पर खड़ा कर सकता है, या अपने प्रेमपूर्ण हृदय को ही विश्व-मंदिर का रूप दे सकता है। पर क्या ही अच्छा हो, यदि सर्वसाधारण के हितार्थ सचमुच ही एक ऐसा विशाल विश्व-मंदिर खड़ा किया जाए। क्यों न कुछ सनकी सत्यप्रेमी नौजवान इस निर्माण-कार्य में जुट जाएँ। इससे निस्संदेह संशय, अविश्वास और अनिश्वरता का दूषित वायुमंडल हट जाएगा और सूखे दिलों से भी फिर एक बार प्रेम-रस का स्रोत फूट पड़ेगा।

वह विश्व-मंदिर होगा कैसा? एक अजीब-सा मकान होगा वह। देखते ही हर दर्शक की तबीयत हरी हो जाएगी। रुचि वैचित्र्य का पूरा ख्याल रखा जाएगा। भिन्नताओं में अभिन्नता दिखाने की चेष्टा की जाएगी। नक्शा कुछ ऐसा रहेगा, जो हर एक की आँखों में बस जाए।

किसी एक खास धर्म-संप्रदाय का न होकर वह मंदिर सर्व धर्म संप्रदायों का समन्वय-मंदिर होगा। वह सबके लिए होगा, सबका होगा। वहाँ बैठकर सभी सबके मनोभावों की रक्षा कर सकेंगे, सभी-सबको सत्य, प्रेम और करुणा का भाग दे सकेंगे।

चित्र उस मंदिर में ऐसे-ऐसे भावपूर्ण अंकित किए जाएँगे, कि पाषाण-हृदय दर्शक को भी उनसे सत्य और प्रेम का कुछ-न-कुछ संदेश मिला करेगा। किसी चित्र में राज-राजेश्वर राम गरीब गुह को गले लगाए हुए दिखाई देंगे, तो कहीं वे भीलनी के हाथ से उसके जूठे बेर चखते मिलेंगे। कहीं सत्यवीर हरिश्चंद्र, रानी शैव्या से वत्स रोहिताश्व का आधा कफ़न दृढ़ता से माँगता होगा। कहीं त्रिलोकेश्वर कृष्ण एक दीन दरिद्र अतिथि के धूल-भरे पैरों को अपने प्रेम अश्रुओं से पखारते मिलेंगे, और कहीं वही योगेश्वर वासुदेव घबराए हुए पार्थ को अनासक्तियोग का संदेश दे रहे होंगे और भी वहाँ ऐसे ही अनेक चित्र देखने को मिलेंगे। भगवान बुद्ध एक वेश्या के हाथ से भिक्षा ग्रहण कर रहे होंगे। कहीं घिनौने कोढ़ियों के घाव धोते हुए दयालु ईसा का सुंदर चित्र देखने को मिलेगा और किसी चित्र में वही महात्मा संसार के पापों को अपने रक्त से धोने के लिये सूली पर चढ़ता हुआ दिखाई देगा। प्रियतमा सूली को चूमने वाला मस्त मंसूर भी वहीं मुसकराता हुआ नजर आएगा। कहीं दर्द दीवानी मीरा अपने प्यारे सजन का चरणोदक समझ कर जहर का प्याला प्रेम से पी रही होगी, और किसी चित्र में निर्बल सूर की बाँह झटक कर वह नटखट नंदनंदन वहीं कहीं लुका-छिपा खड़ा होगा।

एक और त्रित्र वहाँ आप देखेंगे, खादी की लंगोटी धारण किए गांधी एक तरफ़ चर्खा चला रहा होगा। उसकी गोद में अछूतों के नंगधड़ंग बच्चे खेलते होंगे और वह अपने मोहन-मंत्र से विपक्षियों के भी हृदय में प्रेम और सत्य को जागृत कर रहा होगा।और भी कितने ही सजीव चित्र उस मंदिर में खिंचे होंगे। हिमालय, गंगा, काशी, अयोध्या के दृश्य आप देखेंगे। वहीं बौद्धों के स्तूप और विहार भी दिखाई देंगे। काबा और येरुसलम के तीर्थ भी वहाँ अंकित होंगे। बड़े-बड़े ऋषियों के मस्त औलियों के और प्रेम-पीर का मर्म बतलाने वाले संतों और सूफियों के आकर्षक चित्र देखकर आप आनंद के आकाश में उड़ने लगेंगे।

वहाँ अनेक धर्म-ग्रंथों के समन्वयसूचक महावाक्य भी दीवारों पर खुदे होंगे। वेद के मंत्र, कुरान की आयतें, अवेस्ता की गाथाएँ, बौद्धों के सुत्त, इंजील के सरमन, कन्फ्यूशियस के सुवचन, कबीर के सबद और सूर के भजन आप उस मंदिर की पवित्र दीवारों पर पढ़ेंगे। किसी भी धर्मवाक्य में भेद न दिखाई देगा। सबका एक ही लक्ष्य, एक ही मतलब होगा। सब एक ही प्यारे प्रभु की तरफ इशारा कर रहे होंगे। उस विश्व-मंदिर की दीवारों पर खुदे हुए वे प्रेममंत्र संशय और भ्रम का काला पर्दा उठा देंगे, अनेकता में एकता की झलक दिखा देंगे।

वहाँ की उपासना में पूर्व-पश्चिम का झगड़ा न रहेगा। सिरजनहार किस तरफ नहीं है ? यह सारी दिशाएँ उसी की तो हैं। सारी भूमि गोपाल की तो है। वहाँ के एक-एक पत्थर में और एक-एक ईंट में प्यार ही प्यार भरा होगा। उन पत्थरों को चूमने में बेहद मजा आएगा, और उन्हें दंडवत् प्रणाम करने में भी अपार आनंद मिलेगा। वहाँ एक साथ प्रेम का प्रसाद बाँटा जाएगा और वहीं खुदी की कुर्बानी भी की जाएगी।

सभी बेरोक-टोक उस विश्व-मंदिर के अंदर जा सकेंगे। वहाँ प्रवेश निषेध की तख्ती न होगी। विद्वान भी वहाँ जाएँगे और मूर्ख भी जाएँगे, पुण्यात्मा जिस द्वार से जाएँगे, उसी द्वार से पापात्मा भी जाकर प्रार्थना में शामिल होंगे। पतित से पतित मानव को भी वहाँ प्यार की पाक जगह मिलेगी। दलित और दंडित, दीन और दुखी, पतित और पापी सभी वहीं परमपिता का दर्शन ले सकेंगे, सभी गोविंद का गुणगान कर सकेंगे। पश्चाताप के आँसुओं से सुबह-शाम मंदिर का आँगन पखारा जाएगा और प्रायश्चित की धूप से उसका कोना-कोना सुवासित किया जायेगा।

उस महान् समन्वय मंदिर में ही साधकजन लोक-सेवा और विश्व-प्रेम का आदेश प्राप्त कर सकेंगे। धार्मिक झगड़ों से ऊबे हुए और मजहबी खूँरेजी से घबराये हुए शांति प्रिय साधक वहाँ जाकर बैठ कर दिव्य प्रेम की साधना किया करेंगे। अपनी-अपनी दिली राह से हर कोई वहाँ अपने राम को रिझाएगा। उस मंदिर में मैं-तू न होगा। वही वही होगा।

क्या ऐसा सुंदर विश्व-मंदिर किसी दिन खड़ा किया जा सकेगा? क्यों नहीं ? पागल क्या नही कर सकते ? उनके दिल में बात उतर भर जाए, फिर ऐसा कौन-सा काम है जिसे वे पूरा न कर सकें ? वह शुभ

दिन जल्द आ जाए जब इस कल्पना का विश्व-मंदिर हमारे वृद्ध भारत की तपोभूमि पर निर्मित हो जाए और उस पर किसी धर्म-मजहब का नही बल्कि सत्य और ईमान का ऊँचा सफेद झंडा लहरा उठे।

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक सर्वसाधारण के लिये प्रत्यक्ष और स्थूल विश्व मंदिर बनाए जाने की अभिलाषा क्यों व्यक्त करता है ?
2. अपने कल्पित विश्व-मंदिर में लेखक ने किन चित्रों को रखने का सुझाव दिया है?
3. अभीप्सित मंदिर में कौन-कौन से महावाक्य खुदे होंगे ?
4. उस मंदिर में उपासना-पद्धति की क्या विशेषताएँ होंगी ?
5. उस मंदिर के प्रति सर्वसाधारण की प्रतिक्रिया के विषय में लेखक के विचारों की समीक्षा कीजिए।
6. लेखक ने ईश्वर के संबंध में सगुण और निर्गुण दोनों प्रमुख मतों के अनुरूप विश्व-मंदिर की कल्पना की है। यह बात किस प्रकार संभव हो सकती है?
7. निम्नलिखित से धर्म की किन विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है:
   (क) राम का गुह को गले लगाना,
   (ख) भगवान बुद्ध का वेश्या से भिक्षा ग्रहण करना,
   (ग) ईसा का कोढ़ियों के घाव धोना।
   (घ) हरिश्चंद्र का शैव्या से कफन का आधा भाग माँगना,
8. इस पाठ का मुख्य उद्देश्य क्या है ?
9. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   स्तूप, येरुसलम, काबा, अवेस्ता, कुरान, वेद, इंजील, कन्फ्यूशियस।
10. इस पाठ से कुछ पदबंधों का चयन कर उनका प्रकार बताइए।

सियारामशरण गुप्त
(1895-1963)

सियारामशरण गुप्त हिंदी के उन मूर्धन्य कथाकारों में हैं, जिनकी कला चेतना में गांधीवाद का पूर्ण परिपाक मिलता है। उनका मानसिक अस्तित्व और फलतः उनका साहित्य अहिंसा, करुणा और प्रेम की भावनाओं से ओतप्रोत है।

उनका जन्म झाँसी के चिरगाँव नामक स्थान पर हुआ था। अपने अग्रज मैथिलीशरण गुप्त की भाँति वे अपने आचार-व्यवहार में सौम्य और सरल व्यक्ति थे। व्यक्तित्व के अनुरूप उनका साहित्य भी उदात्त भावनाओं से अनुप्राणित है।

हिंदी साहित्य जगत् में सियारामशरण विशेषतः कवि-रूप में प्रसिद्ध हैं। **विषाद, अनाथ, आर्द्रा, उन्मुक्त, मृण्मयी, गोपिका** आदि उनकी उल्लेखनीय काव्य कृतियाँ हैं। किंतु उन्होंने गद्य के विविध रूपों को भी सफलतापूर्वक अपनाया है। **पुण्य पर्व** शीर्षक नाटक, **गोद, नारी** तथा **अंतिम आकांक्षा** शीर्षक उपन्यास, **मानुषी** शीर्षक कहानी संग्रह और **झूठ-सच** शीर्षक निबंध संकलन उनकी गौरवपूर्ण रचनाएँ हैं।

सियारामशरण की रचनाओं की सर्वप्रमुख विशेषता उनमें निहित वेदना और करुणा का भाव है। उनमें बुद्धि के तर्क-वितर्क की अपेक्षा हृदय की कोमल भावनाओं को अधिक महत्ता मिली है। दार्शनिक दृष्टि से ये गांधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों के पोषक हैं। जीवन के प्रति उनके अहिंसात्मक दृष्टिकोण ने उनकी रचनाओं में भी पवित्रता, सादगी और सहानुभूति भर दी है। उनकी कृतियों का अभिव्यक्ति पक्ष अत्यंत समृद्ध है। भाषा में व्यावहारिक शब्दावली को स्थान देने के कारण उसमें हृदय को स्पर्श करने की शक्ति विद्यमान है।

शैली की दृष्टि से उन्होंने वर्णनात्मक, चित्रात्मक, विचारात्मक और भावात्मक शैली को अपनाया है।

कोटर और कुटीर सियारामशरण गुप्त की बहुचर्चित विशिष्ट कहानी है, जिसमें जीवन-मूल्यों की रक्षा करने को व्रत की संज्ञा दी जा सकती है।लेखक ने व्रत पालन के लिए कठोर कष्ट सहन का उदात्त उदाहरण प्रस्तुत किया है। चातक कुमार के विचलन को गोकुल की दृढ़ता निर्मूल कर देती है और वह व्रत पालन के संकल्प के साथ कोटर की ओर रवाना होता है और मार्ग में ही उसकी पिपासा को शांत करने के लिए बादल उमड़ पड़ते हैं। निष्कर्ष यह है कि यदि हम जीवन -मूल्यों की रक्षा के निमित्त दृढ़ प्रतिज्ञ हो जाएँ तो सुख के साधन हाथ जोड़े हमारे समक्ष उपस्थित हो जाएँ और हमारी सभी आकांक्षाएँ पूरी हो जाएँ।

कोटर और कुटीर की दोहरी कथावस्तु क्रमशः समस्या और उसका समाधान प्रस्तुत कर एक दूसरी की पूरक ही नहीं है, बल्कि कथानक का सुंदर संतुलन भी उपस्थित करती है।

3. कोटर और कुटीर

कोटर

दोपहरी का समय था। सूर्य अग्नि-शलाकाओं से पृथ्वी का शरीर दग्ध कर रहा था। वृक्षों के पत्ते निस्पंद थे। मानो किसी और भयंकर कांड की आशंका से साँस-सी साधे खड़े हैं। इसी समय अपने छोटे से कोटर के भीतर बैठे हुए चातक-पुत्र ने कहा, "पिता !"

बाहर की सहज स्निग्ध वनस्थली के वर्तमान रूखेपन की तरह ही वह स्वर कुछ नीरस था। चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा, "क्या है बेटा ?"

"है और क्या ? प्यास के मारे चोंच तक प्राण आ गए हैं।"

"बेटा, अधीर न हो। समय सदा एक-सा नहीं रहता।"

"तो यही तो मैं भी कहता हूँ – समय सदा एक-सा नहीं रहता। पुरानी बातें पुराने समय के लिए थीं। आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाए हुए हैं जिस तरह बानरी गरे बच्चे को चिपकाए रहती है। घनश्याम की बाट आप जोहते रहिए। अब मुझसे यह नहीं सध सकता।"

"घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते। यही हमारे कुल का व्रत है। इस व्रत के कारण अपने गोत्र में न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अनर्थ।"

"आप कहते हैं, कोई अनर्थ नहीं हुआ, मैं कहता हूँ, प्यास की इस यंत्रणा से बढ़कर और अनर्थ क्या होगा ? जहाँ से भी होगा, मैं जल ग्रहण करूँगा ही।"

चातक सिहरकर पंख फड़फड़ाने लगा। मानो उसने उन अश्रव्य वचनों और कानों के बीच में कोलाहल की परिखा-सी खड़ी कर देनी चाही। थोड़ी देर तक चुप रहकर वह बोला, "बेटा धैर्य रख। अपने इस

व्रत के कारण ही पानी बरसता है और धरती माता की गोद हरी-भरी होती है। यह व्रत इस तरह नष्ट कर देने की वस्तु नहीं।''

लाड़ले लड़के ने कहा, ''व्रत-पालन करते हुए इतने दिन तो हो गए, पानी का कहीं चिह्न तक नहीं है। गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी-नाले सब सूख गए। फिर सूर्य के और निकट रहने वाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है ?''

''बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवनदान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिए थोड़ी-सी क्षुधा सहन करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।''

''पिताजी, मैं थोड़ी-सी क्षुधा से नहीं डरता। परंतु यह भी नहीं चाहता कि क्षुधा-ही-क्षुधा सहन करता रहूँ। मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूँ। देवताओं का अभिशाप लेकर भी मैं इसे तोड़ूँगा। घनश्याम को भी तो सोचना चाहिए था कि उनके बिना किसी के प्राण निकल रहे हैं। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिये नहर , तालाब और कुओं का बंदोबस्त कर लिया है। कृषि ने आपकी तरह सिर नहीं हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नहीं छुऊँगी। हमीं क्यों इस तरह कष्ट सहें? आप चाहें रखें या छोड़ें, मैं यह झंझट न मानूँगा।''

चातक ने देखा मामला बेढब हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा, ''यह बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे?''

चातक-पुत्र चुप। उसने अभी तक इस बात पर विचार हीं नहीं किया था। वह सोचता था, जिस प्रकार लाखों जीव-जंतु जल पीते है उसी प्रकार मैं भी पिऊँगा। परंतु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ में न आया था।

लड़के को चुप देखकर पिता ने समझा कमजोरी यहीं है। वह जानता था कि कमजोरी के ऊपर से ही आक्रमण करना विजय की पहली सीढ़ी है। बोला, ''चुप कैसे रह गए? बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे।''

हिचकिचा कर अपनी बात स्वयं ही खंड-खंड करते हुए लड़के ने कहा, ''जहाँ से और दूसरे ग्रहण करते हैं, वहीं से मैं भी करूँगा।''

पिता ने कहा – ''पड़ोस में वह पोखरी है। अनेक पशु-पक्षी और

आदमी भी वहाँ जल पीते हैं। तुम वहाँ जल पी सकोगे ? बोलो, है हिम्मत?"

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आ गई। अह, उसमें कितनी गंदगी है ! सूखे पत्ते, डंठल आदि गिरकर उसमें सड़ते रहते हैं। कीड़े कुलबुलाते हुए उसमें साफ दिखाई दे सकते हैं। लोग उसमें कपड़े निखारने आते है, या गंदे करने, कई बार सोचने पर भी वह समझ न सका था। एक बार एक आदमी को अँजुली से पानी पीते देख उसने पिता से कहा था 'देखो पिताजी, ये कैसे घृणित जीव हैं!" अवश्य ही उसने अपने व्रत का जिक्र उस समय नहीं किया था, परंतु उसके मन में उसी का गर्व छलक उठा था। अब इस समय वह पिता से कैसे कहे कि मैं उस पोखरी का पानी पिऊँगा ?

चातक बोला, "बेटा, अभी तुम नासमझ हो ! चाहे जहाँ से पानी ग्रहण करना इस समय तुम आसान समझ रहे हो, परंतु जब इसके लिये बाहर निकलोगे तब तुम्हें मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुझसे अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा ?"

चातक-पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करने वाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिता की बात बिना सुने वह बोल उठा, "मैं गंगा जल ग्रहण करूँगा।"

चातक ने कहा, "गंगाजी तो यहाँ से पाँच दिन की उड़ान पर हैं। तू नहीं मानता तो जा। परंतु यदि तूने और कहीं एक बूँद भी ली, तो हमें मुँह न दिखाना!"

चातक-पुत्र प्रणाम करके फुर्र से उड़ गया।

कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था। छोटी-छोटी दो कोठरियाँ, फिर उन्हीं के अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुककर घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के "दत्तक" से पूरी किया चाहती थीं।

उस घर में और कुछ हो या न हो, आँगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिए वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता तथा सघनता ने चातक-पुत्र को अपने निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम पाकर भी उसके जी में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पकी निबौरी की तरह उस वेदना में भी कुछ माधुर्य था।

नीचे वृक्ष की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी अभी कुछ दिन पहले तक, उसके पैरों में जीवन यात्रा की इतनी ही मंजिल तय करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह करके मानो आधे-आधे शरीर का बँटवारा कर लिया। स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर में 15-16 वर्ष का एक मात्र पुत्र, गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रतिदिन संध्या-समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया था, इसलिए बुद्धन उसके लिए छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आए थे। इधर-उधर चारों ओर सन्नाटा था और घर में अकेला बुद्धन। यद्यपि उसमें खाट के नीचे उतरने तक की शक्ति नहीं थी, तो भी उसका मन न जाने कहाँ-कहाँ चौकड़ी भर रहा था। गोकुल सवेरे थोड़े-से चने खाकर काम पर गया था। बुद्धन के लिए भी कुछ चने और पीने का पानी यथास्थान रख गया था। आज खाने के लिए घर में और कुछ था ही नहीं। कह गया था, शाम को मजूरी के पैसों का आटा लाकर रोटी बनाऊँगा। परंतु आज वह अभी तक नहीं आया था। अनेक आशंकाओं से बुद्धन का मन चंचल था। जो समय आनंद की स्निग्ध शीतल छाया में, शीतकाल के दिन की तरह, मालूम भी नहीं होने पाता और निकल जाता है, वही दुःख की दाहक ज्वाला में निदाघ के दीर्घ दिनों की भाँति अकाट्य हो उठता है। रात बहुत नहीं बीती थी, परंतु बुद्धन को मालूम हो रहा था कि बरसों का समय हो गया। बार-बार अपने कान खड़े करके रात के उस सन्नाटे में वह गोकुल के पद शब्द

सुनने का प्रयत्न कर रहा था।

बड़ी देर बाद उसकी प्रतीक्षा सफल हुई। किवाड़ खुलने की आवाज सुनकर वह चौंका। वास्तव में यह गोकुल ही था। उसने कहा, ''कौन गोकुल ! बेटा आज बड़ी देर लगाई।''

गोकुल धीरे से पिता की खाट के पास आकर रोने लगा।

बुद्धन ने घबड़ाकर पूछा, ''क्या हुआ, बेटा क्या हुआ ?''

''आज मजूरी नहीं मिली। अब कैसे चलेगा ?''

''ऐं, मजूरी नहीं मिली। फिर इतनी देर क्यों हुई ?''

प्रकृतिस्थ होकर गोकुल ने उसे अपना हाल सुनाया। सवेरे घर से निकलते ही गोकुल को सामने खाली घड़ा मिला। देखकर उसके पैर ढीले पड़ गए। सोचा – आज भगवान ही मालिक है। काम पर पहुँचकर उसने देखा – ओवरसियर साहब आज कुछ ज़्यादा खफा हैं। इंजीनियर साहब काम देखने आए थे। जान पड़ता है, काम देखने की जगह वे ओवरसियर साहब को ही देख गए थे। अन्याय का यह बोझ उन्होंने दिन भर मजदूरों पर अच्छी तरह उतारा। शाम को मजदूरी देने के समय भी साफ इनकार कर दिया–आज दाम नहीं दिए जाएँगे। उस अदालत के फैसले की तरह, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती, ओवरसियर साहब का हुक्म मानकर मजदूर अपने-अपने घर लौट गए।

गोकुल लौटा चला आ रहा था कि एक जगह उसे रास्ते में कुछ पड़ा हुआ दिखाई दिया। पास पहुँचने पर मालूम हुआ, रुपए-पैसे रखने का बटुआ है। उठाकर देखा तो काफी वजनदार था। वह सोच में पड़ गया – इसे खोल कर देखना चाहिए या नहीं। न देखने का निश्चय ही उसे दृढ़ करना पड़ा। कौतूहल-निवृत्ति करने के लिये उसने उसे टटोला। टटोलने पर मालूम हुआ रुपए हैं और बहुत कम भी नहीं। थोड़ी देर तक वह वहीं खड़ा-खड़ा सोचता रहा। इसका क्या करूँ ? उसके पिता ने उसे अब तक जो कुछ सिखाया था, उसने उसे इस बात के सोचने का अवसर ही नहीं दिया कि बटुआ अपने पास रख ले। वह यही सोच रहा था कि यह बटुआ किसका है ? जब उसे मालूम होगा कि उसका बटुआ खो गया है तब उसकी क्या दशा होगी? रुपये-पैसे का क्या मूल्य है, यह बात वह कुछ दिनों में ही अच्छी तरह जान गया था। उस व्यक्ति की उस समय की दशा का विचार करके वह इस प्रकार सिहर उठा, मानो

उसी का बटुआ खो गया हो। ।

उसे ध्यान आया कि कुछ दूर उसने एक गाड़ी जाती हुई देखी थी उस पर कान में मोती-पिरोई सोने की बाली पहने हुए एक महतो बैठे थे। संभव है यह बटुआ उन्हीं का हो। और किसी के पास इतने रुपए होना आसान भी नहीं है। वहाँ कुएँ पर गाड़ी रोककर उन्होंने पानी पिया होगा और आग जला कर तमाखू भरी होगी। एक जगह आग जलाई जाने के चिह्न मौजूद थे। उसने इस बात पर विचार ही नहीं किया कि गाड़ी तक जाने में कितना समय लगेगा और वह दौड़ पड़ा।

लगभग आधे घंटे के परिश्रम से वह उस गाड़ी के पास पहुँच गया। गोकुल ने हाँफते-हाँफते पूछा, "महतो तुम्हारा कुछ खो तो नहीं गया?"

महतो ने चौंककर गाड़ी में इधर-उधर देखा। साथ ही जेब पर हाथ रखा तो पाषाण की तरह निस्पंद हो गए। गोकुल से महतो की वह अवस्था देखी न गई। बटुआ दिखाकर उसने झट से प्रश्न कर दिया, "यह तुम्हारा है ?"

एक क्षण में ही जीवन और मृत्यु का द्वंद्व-सा हो गया। मानो बिजली के खटके ने प्रकाश बुझाकर फिर से उद्दीप्त कर दिया हो। महतो ने कहा, "भगवान तुझे सुखी रखें भैया ! इसे कहाँ पाया ?"

"रास्ते में पड़ा था। इसमें कितने रुपये हैं?"

महतो ने हिसाब लगाकर बताया, "बयालीस रुपये, एक अठन्नी, एक घिसी हुई बेकाम दुअन्नी, दस या बारह आने पैसे, एक कागज, एक चाँदी का छल्ला ..."

गोकुल ने बटुआ खोल कर रुपये गिने। सब ठीक निकले। बटुआ हाथ में लेकर महतो की आँखों में आँसू भर आए। बोले, "इतनी बड़ी रकम पाकर भी जिसे उसका लोभ न हो, भैया, मैंने ऐसा आदमी आज तक नहीं देखा। यदि किसी और को यह बटुआ मिलता तो मेरा मरण हो जाता। मेरा रोम-रोम असीस रहा है, भगवान् तुम्हें सदा सुखी रखें ...।" यह कहकर महतो ने बटुए से निकालकर गोकुल को दो रुपए देने चाहे। उसने सिर हिलाकर कहा, "मेरे बप्पा ने किसी से भीख लेने के लिए मुझे मना कर दिया है। मुफ्त के रुपए मैं न लूँगा"।

महतो के सजल नेत्र विस्मय से खुले ही रह गए। गोकुल थोड़ी ही

देर में उस अंधकार में उनकी आँखों से ओझल हो गया।

सब वृत्तांत सुनाकर गोकुल अपराधी की भाँति खड़ा-खड़ा बोला, "बप्पा, आज खाने के लिये कुछ नहीं है। महतो से कुछ उधार माँग लाता, तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं।"

बुद्धन की आँखों से झर-झर आँसू झरने लगे। गोकुल को अपनी दोनों भुजाओं में भरकर उसने छाती से लगा लिया। आनंदातिरेक ने उसका कंठावरोध कर दिया। उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा वह दो-एक दिन की तो बात ही क्या जीवन भर की क्षुधा शांत कर सकती है। धन-संपत्ति, मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ से प्रतीत होने लगे। मानो एकाएक उसके सब दुःख रोग दूर हो गए हैं। अब वह बिना किसी चिंता के मृत्यु का आलिंगन इसी क्षण कर सकता है।

बड़ी देर में अपने को सँभालकर बुद्धन बोला, "अच्छा ही किया बेटा, जो तू महतो से रुपये उधार नहीं लाया। यह उधार माँगना भी एक तरह का माँगना ही होता। भगवान ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही देख कर निहाल हो गया। दो-एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना। मुझे मालूम हो गया, यह तू मुझसे भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी कहता हूँ सदा ऐसी ही मति रखना। चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नीयत न डुलाना।"

ऊपर चातक-पुत्र सुन रहा था। उसकी आँखों से भी झर-झर आँसू झरने लगे। बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका। पौ फटते ही बड़े सवेरे वह फिर उड़ा। परंतु आज वह विपरीत दिशा को चला, उसी दिशा को, जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान पहले से तेज हो गई थी। फिर भी अपने कोटर तक पहुँचने में उसे चार दिन की जगह सात दिन लग गए। दूसरे दिन से ही मेघों ने उठकर ऐसी झड़ी लगा दी कि बीच-बीच में कई जगह रुककर ही वह वहाँ तक पहुँच सका।

प्रश्न-अभ्यास

1. प्रस्तुत पाठ से उदाहारण देते हुए ''व्रत'' शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिए और मानव-जीवन के लिए उसका महत्त्व बताइए।
2. ''बेटा समय सदा एक-सा नहीं रहता'', चातक ने यह वाक्य किस अभिप्राय से कहा ? चातक-पुत्र ने इसका क्या अर्थ लिया ?
3. ''हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुझसे अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा?'' इन पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए।
4. ''गरीब और भूखा होते हुए भी गोकुल को न तो बटुए का लोभ ही सता सका और न ही उसने मुफ्त के रुपए लेना स्वीकार किया।'' इस उक्ति के आधार पर गोकुल के चरित्र की विशेषताएँ बताइए।
5. चातक-पुत्र को किस प्रकार अपनी आत्म-मर्यादा और आत्माभिमान का बोध हुआ ? इस प्रसंग को अपने शब्दों में लिखिए।
6. रोगी-दुःखी और चिंताकुल बुद्धन को ऐसा क्या मिल गया जिससे मानो एकाएक उसके दुःख दूर हो गए हैं? बुद्धन की इस आनंदमय मनोदशा का सौ शब्दों में एक सुंदर भाव-चित्र प्रस्तुत कीजिए।
7. यह कहानी दो कहानियों को मिलाकर लिखी गई है। ये दोनों कहानियाँ किस प्रकार एक दूसरे की पूरक हैं, स्पष्ट कीजिए।
8. कोटर में वापस पहुंचने पर चातक और चातक-पुत्र में किस प्रकार संवाद हुआ होगा अपनी कल्पना के आधार पर यह संवाद लिखिए।
9. हिचकिचाकर अपनी बात स्वयं ही खंड-खंड करते हुए लड़के ने कहा, ''जहाँ से और दूसरे पशु-पक्षी ग्रहण करते हैं वहीं से मैं भी करूँगा''।
10. इस वाक्य में प्रयुक्त विराम चिह्नों का नाम लिखिए।
    (क) पड़ोस में वह पोखरी है।
    (ख) अह, उसमें कितनी गंदगी है!
    (ग) तुम वहाँ जल पी सकोगे ?
    उपर्युक्त वाक्यों में निहित भावों के आधार पर वाक्यों के प्रकार लिखिए।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

(1906 - 1995)

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का जन्म सहारनपुर के देवबंद नगर में हुआ था। प्रारंभिक जीवन से ही राजनीतिक और सामाजिक कार्यों में भाग लेने के कारण उन्हें अनेक बार कारावास की यातना सहनी पड़ी।

पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रभाकर जी का कार्य विशेष रूप से सराहनीय रहा है। **ज्ञानोदय** पत्रिका का कुछ समय तक संपादन करने के अलावा सहारनपुर से प्रकाशित होने वाले पत्र **नया जीवन** तथा **विकास** का उन्होंने लंबे अरसे तक संपादन किया। भारत सरकार ने उनकी हिन्दी सेवाओं के लिए 1990 में पद्म श्री की उपाधि से अलंकृत किया।

कन्हैयालाल जी ने हिन्दी को अनेक रेखा-चित्र-संस्मरण, निबंध तथा रिपोर्ताज प्रदान किए। इस दृष्टि से उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं– **नई पीढ़ी नए विचार, जिंदगी मुसकराई, माटी हो गई सोना, आकाश के तारे, धरती के फूल, दीप जले शंख बजे, बाजे पायलिया के घुँघरू, क्षण बोले, कण मुसकाए, महके आँगन चहके द्वार, जिएँ तो ऐसे जिएँ,** आदि।

मिश्र जी के चिंतन पर गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव है। उनकी शैली सजीव, प्रवाहपूर्ण, आत्मीय एवं मर्मस्पर्शी है। छोटी-से-छोटी एवं बड़ी-से-बड़ी बात को सहजता से कह जाने में वे सिद्धहस्त हैं। उनकी समस्त रचनाओं में नवीनता एवं ताजगी रहती है जो पाठकों को बरबस अपनी ओर खींच लेती है।

मैं और मेरा देश राष्ट्र-भक्ति की भावना से उद्वेलित एक विचारात्मक निबंध है, जिसमें लेखक ने मैं और देश में अभिन्नता स्थापित करते हुए देश की शक्ति और सौंदर्य की अभिवृद्धि हेतु नागरिकों के कर्तव्यों की ओर ध्यान दिलाया है। वाक्य छोटे-छोटे और सधे हुए हैं। उदाहरण, उद्धरण और सूक्ति शैली का सहारा लेकर अपनी बात को पुष्ट और स्थापित किया है।

4. मैं और मेरा देश

मैं अपने घर में जन्मा था, पला था।

अपने पड़ोस में खेलकर, पड़ोसियों की ममता-दुलार पा बड़ा हुआ था।

अपने नगर में घूम-फिरकर वहाँ के विशाल समाज का संपर्क पा, वहाँ के संचित ज्ञान-भंडार का उपयोग कर, उसे अपनी सेवाओं का दान दे, उसकी सेवाओं का सहारा पा और इस तरह एक मुनष्य से एक भरा पूरा नगर बन कर मैं खड़ा हुआ था।

मैं अपने नगर के लोगों का सम्मान करता था, वे भी मेरा सम्मान करते थे।

मुझे बहुतों की अपने लिए जरूरत पड़ती थी। मैं भी बहुतों की ज़रूरत का उनके लिए जवाब था।

इस तरह मैं समझ रहा था कि मैं अपने में अब पूरा हो गया हूँ, पूरा फैल गया हूँ, पूरा मनुष्य हो गया हूँ।

मैं सोचा करता था कि मेरी मनुष्यता में अब कोई अपूर्णता नहीं रही, मुझे अब कुछ न चाहिए, जो चाहिए, वह सब मेरे पास है – मेरा घर, मेरा पड़ोस, मेरा नगर और मैं। वाह, कैसी सुंदर, कैसी संगठित और कैसी पूर्ण है मेरी स्थिति !

एक दिन आनंद की इस दीवार में एक दरार पड़ गई और तब मुझे सोचना पड़ा कि अपने घर, अपने पड़ोस, अपने नगर की सीमाओं में ममता, सहारा, ज्ञान और आनंद के उपहार पाकर भी मेरी स्थिति एक दम हीन है और हीन भी इतनी कि मेरा कहीं भी कोई अपमान कर सकता है—एक मामूली अपराधी की तरह और मुझे यह भी अधिकार नहीं कि मैं उस अपमान का बदला लेना तो दूर रहा, उसके लिए कहीं

अपील या दया-प्रार्थना ही कर सकूँ।

"क्या कोई भूकंप आया था, जिससे दीवार में यह दरार पड़ गई?"

बड़े महत्त्व का प्रश्न है। इस अर्थ में भी कि यह बात को खिलने का, आगे बढ़ने का, अवसर देता है और इस अर्थ में भी कि ठीक समय पर पूछा गया है। ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने में एक अपूर्व आनंद आता है, तो उत्तर यह है आपके प्रश्न का :

जी हाँ, एक भूकंप आया था, जिससे दीवार में यह दरार पड़ गई और लीजिए आपको कोई नया प्रश्न न पूछना पड़े, इसलिये मैं अपनी ओर से ही कहे दे रहा हूँ कि यह दीवार थी मानसिक विचारों की, मानसिक विश्वासों की। इसलिए यह भूकंप भी किसी प्रांत या प्रदेश में नहीं उठा, मेरे मानस में ही उठा था।

"मानस में भूकंप उठा था ?"

हाँ, जी, मानस में भूकंप उठा था और भूकंप में कहीं कोई धरती थोड़े ही हिली थी, आकाश थोड़े ही काँपा था, एक तेजस्वी पुरुष का अनुभव ही वह भूकंप था, जिसने मुझे हिला दिया।

वे तेजस्वी पुरुष थे स्वर्गीय पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय। अपने महान् राष्ट्र की पराधीनता के दीन दिनों में जिन लोगों ने अपने रक्त से गौरव के दीपक जलाए और जो घोर अंधकार और भयंकर बवंडरों के झकझोरों में जीवन भर खेल, उन दीपकों को बुझने से बचाते रहे, उन्हीं में एक थे हमारे लाला जी। उनकी कलम और वाणी दोनों में तेजस्विता की ऐसी किरणें थीं कि वे फूटतीं, तो अपने मुग्ध हो जाते और पराए भौचक !

वे उन्हीं दिनों सारे संसार में घूमे थे। उनके व्यक्तित्व के गठन में उनके परिवार, उनके पास-पड़ोस और उनके नगर ने अपने सर्वोत्तम रत्नों की जोत उन्हें भेंट दी थी। अजी, क्या बात थी उनके व्यक्तित्व की! क्या देखने में, क्या सुनने में, वे एक अपूर्व मनुष्य थे। कौन था भला ऐसा, जिस पर वे मिलते ही छा न जाते। संसार के देशों में घूम-कर वे अपने देश में लौटे, तो उन्होंने अपना सारा अनुभव एक ही वाक्य में भरकर बखेर दिया। वह अनुभव ही तो वह भूकंप था, जिसने मेरी पूर्णता की ठसक को अपूर्णता की कसक में बदल दिया।

उनका वह अनुभव यह था "मैं अमेरिका गया, इंग्लैंड गया, फ्रांस गया और संसार के दूसरे देशों में भी घूमा, पर जहां भी मैं गया, भारतवर्ष की गुलामी की लज्जा का कलंक मेरे माथे पर लगा रहा।"

क्या सचमुच यह अनुभव एक मानसिक भूकंप नहीं है, जो मनुष्य को झकझोरकर कहे कि किसी मनुष्य के पास संसार के ही नहीं, यदि स्वर्ग के भी सब उपहार और साधन हों, पर उसका देश गुलाम हो या किसी भी दूसरे रूप में हीन हो, तो वे सारे उपहार और साधन उसे गौरव नहीं दे सकते ?

इस अनुभव की छाया में मैं सोचता हूँ कि मेरा यह कर्तव्य है कि मुझे निजी रूप में सारे संसार का राज्य भी क्यों न मिलता हो, मैं कोई ऐसा काम न करूँ, जिससे मेरे देश की स्वतंत्रता को, दूसरे शब्दों में उसके सम्मान को धक्का पहुँचे, उसकी किसी भी प्रकार की शक्ति में कमी आए। साथ ही उसके एक नागरिक के रूप में मेरा यह अधिकार भी है कि अपने देश के सम्मान का पूरा-पूरा भाग मुझे मिले और उसकी शक्तियों से अपने सम्मान की रक्षा का मुझे, जहाँ भी मैं हूँ, भरोसा रहे।

अजी भला, एक आदमी अपने इतने बड़े देश के लिए कर ही क्या सकता है ? फिर कोई बड़ा वैज्ञानिक हो, तो वह अपने आविष्कारों से ही देश को कुछ बल दे-दे या फिर कोई बहुत बड़ा धनपति हो, तो वह अपने धन का भामाशाह की तरह समय पर त्याग कर ही देश के काम आ सकता है, पर हरेक आदमी न तो ऐसा वैज्ञानिक ही हो सकता है, न धनिक ही। फिर जो बेचारा अपनी ही दाल-रोटी की फिक्र में लगा हुआ हो, वह अपने देश के लिए चाहते हुए भी क्या कर सकता है?

आपका प्रश्न विचारों को उत्तेजना देता है, इसमें संदेह नहीं, पर इस[illegible]ी कोई संदेह नहीं कि इसमें जीवन-शास्त्र का घोर अज्ञान भी भरा हुआ है। अरे भाई, जीवन कोई आपके मुन्ने की गुड़िया थोड़े ही है कि आप कह सकें कि बस यह है, इतना ही है। वह तो एक विशाल समुद्र का तट है, जिस पर हरेक अपने लिए स्थान पा सकता है।

लो, एक और बात बताता हूँ आपको। जीवन को दर्शन-शास्त्रियों ने बहुमुखी बताया है, उसकी अनेक धाराएँ हैं। सुना नहीं आपने कि जीवन एक युद्ध है और युद्ध में लड़ना ही तो कोई एक काम नहीं होता। लड़ने वालों को रसद न पहुँचे, तो वे कैसे लड़ें? किसान ठीक

खेती न उपजाएँ तो रसद पहुँचाने वाले क्या करें और लो, जाने दो बड़ी-बड़ी बातें, युद्ध में जय बोलने वालों का भी महत्त्व है।

"जय बोलने वालों का ?"

हाँ जी, युद्ध में जय बोलने वालों का भी बहुत महत्त्व है। कभी मैच देखने का तो अवसर मिला ही होगा आपको? देखा नहीं आपने कि दर्शकों की तालियों से खिलाड़ियों के पैरों में बिजली लग जाती है और गिरते खिलाड़ी उभर जाते हैं। कवि-सम्मेलनों और मुशायरों की सारी सफलता दाद देने वालों पर ही निर्भर करती है। इसलिए मैं अपने देश का कितना भी साधारण नागरिक क्यों न हूँ, अपने देश के सम्मान की रक्षा के लिये बहुत कुछ कर सकता हूँ। "अकेला चना क्या भाड़ फोड़े!" यह कहावत मैं अपने अनुभव के आधार पर ही आपसे कह रहा हूँ कि सौ फ़ीसदी झूठ है। इतिहास साक्षी है, बहुत बार अकेले चने ने ही भाड़ फोड़ा है और ऐसा फोड़ा है कि भाड़ खील-खील ही नहीं हो गया, उसका निशान तक ऐसा छूमंतर हुआ कि कोई यह भी न जान पाया कि वह बेचारा आखिर था कहाँ ?

मैं जानता हूँ इतिहास की गहराइयों में उतरने का यह समय नहीं है, पर दो छोटी कहानियाँ तो सुन ही सकते हैं आप? और कहानियाँ भी न प्रेमचंद की न एंटन चेखोव की, दो युवकों के जीवन की दो घटनाएँ हैं, पर उन दो घटनाओं में वह गाँठ इतनी साफ है, जो नागरिक और देश को एक साथ बाँधती है कि आप बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़कर भी उसे इतनी साफ नहीं देख सकते।

हमारे देश के महान् संत स्वामी रामतीर्थ एक बार जापान गए। वे रेल में यात्रा कर रहे थे कि एक दिन ऐसा हुआ कि उन्हें खाने को फल न मिले और उन दिनों फल ही उनका भोजन था। गाड़ी एक स्टेशन पर ठहरी, तो वहाँ भी उन्होंने फलों की खोज की पर वे पा न सके। उनके मुँह से निकला : "जापान में शायद अच्छे फल नहीं मिलते!"

एक जापानी युवक प्लेटफार्म पर खड़ा था। वह अपनी पत्नी को रेल में बैठाने आया था , उसने ये शब्द सुन लिए। सुनते ही वह अपनी बात बीच में ही छोड़कर भागा और कहीं दूर से एक टोकरी ताज़े फल लाया। वे फल उसने स्वामी रामतीर्थ को भेंट करते हुए कहा "लीजिए, आपको ताजे फलों की जरूरत थी।"

स्वामी जी ने समझा यह कोई फल बेचने वाला है और उनके दाम पूछे, पर उसने दाम लेने से इनकार कर दिया। बहुत आग्रह करने पर उसने कहा, "आप इनका मूल्य देना ही चाहते हैं तो वह यह है कि आप अपने देश में जाकर किसी से यह न कहिएगा कि जापान में अच्छे फल नहीं मिलते।"

स्वामी जी युवक का यह उत्तर सुन मुग्ध हो गए। वे क्या मुग्ध हो गए उस युवक ने अपने इस कार्य से अपने देश का गौरव जाने कितना बढ़ा दिया !

इस गौरव की ऊँचाई का अनुमान आप दूसरी घटना सुनकर ही पूरी तरह लगा सकेंगे। एक दूसरे देश का निवासी एक युवक जापान में शिक्षा लेने आया। एक दिन वह सरकारी पुस्तकालय से कोई पुस्तक पढ़ने को लाया। इस पुस्तक में कुछ दुर्लभ चित्र थे। ये चित्र इस युवक ने पुस्तक में से निकाल लिए और पुस्तक वापस कर आया। किसी जापानी विद्यार्थी ने वह देख लिया और पुस्तकालय को उसकी सूचना दे दी। पुलिस ने तलाशी लेकर वे चित्र उस विद्यार्थी के कमरे से बरामद किए और उस विद्यार्थी को जापान से निकाल दिया गया।

मामला यहीं तक रहता, तो कोई बात न थी। अपराधी को दंड मिलना ही चाहिए पर मामला यही तक नहीं रुका और उस पुस्तकालय के बाहर बोर्ड पर लिख दिया गया कि उस देश का (जिसका वह विद्यार्थी था) कोई निवासी इस पुस्तकालय में प्रवेश नहीं कर सकता।

मतलब साफ है, एक दम साफ कि जहाँ एक युवक ने अपने काम से अपने देश का सिर ऊँचा किया था, वहीं एक युवक ने अपने काम से अपने देश के मस्तक पर कलंक का ऐसा टीका लगाया, जो जाने कितने वर्षों तक संसार की आँखों में उसे लांछित करता रहा।

इन घटनाओं से क्या यह स्पष्ट नहीं है कि हरेक नागरिक अपने देश के साथ बँधा हुआ है और देश की हीनता और गौरव का ही फल उसे नहीं मिलता, उसकी हीनता और गौरव का फल भी उसके देश को मिलता है।

मैं अपने देश का एक नागरिक हूँ और मानता हूँ कि मैं ही अपना देश हूँ। जैसे मैं अपने लाभ और सम्मान के लिए हरेक छोटी-छोटी बात पर ध्यान देता हूँ वैसे ही मैं अपने देश के लाभ और सम्मान के लिए भी

छोटी-छोटी बातों तक पर ध्यान दूँ, यह मेरा कर्तव्य है और जैसे मैं अपने सम्मान और साधनों से अपने जीवन में सहारा पाता हूँ, वैसे ही देश के सम्मान और साधनों से ही सहारा पाऊँ, यह मेरा अधिकार है। बात यह है कि मैं और मेरा देश दो अलग चीज़ तो हैं ही नहीं !

मैंने जो कुछ जीवन में अध्ययन और अनुभव से सीखा है, वह यही है कि महत्त्व किसी कार्य की विशालता में नहीं है, उस कार्य के करने की भावना में है। बड़े से बड़ा कार्य हीन है, यदि उसके पीछे अच्छी भावना नहीं है और छोटे से छोटा कार्य भी महान् है, यदि उसके पीछे अच्छी भावना है।

महान् कमालपाशा उन दिनों अपने देश तुर्की के राष्ट्रपति थे। राजधानी में उनकी वर्षगाँठ बहुत धूमधाम से मनाई गई। देश के लोगों ने उस दिन लाखों रुपए के उपहार उन्हें भेंट किए। वर्षगाँठ का उत्सव समाप्त कर जब वे अपने भवन में ऊपर चले गए तो एक देहाती बूढ़ा उन्हें वर्षगाँठ का उपहार भेंट करने आया। सेक्रेटरी ने कहा, "अब तो समय बीत गया है।" बूढ़े ने कहा, "मैं तीस मील से पैदल चलकर आ रहा हूँ, इसीलिए मुझे देर हो गई।"

राष्ट्रपति तक उसकी सूचना भेजी गई। कमालपाशा विश्राम के वस्त्र बदल चुके थे। वे उन्हीं कपड़ों में नीचे चले आए और उन्होंने आदर के साथ बूढ़े किसान का उपहार स्वीकार किया। यह उपहार मिट्टी की छोटी-सी हँड़िया में पाव-भर शहद था, जिसे बूढ़ा स्वयं तोड़कर लाया था। कमालपाशा ने हँड़िया को स्वयं खोला और उसमें दो उँगलियाँ भरकर चाटने के बाद तीसरी उँगली शहद में भरकर बूढ़े के मुँह में दे दी। बूढ़ा निहाल हो गया।

राष्ट्रपति ने कहा, "दादा, आज सर्वोत्तम उपहार तुमने ही मुझे भेंट किया, क्योंकि इसमें तुम्हारे हृदय का शुद्ध प्यार है।" उन्होंने आदेश दिया कि राष्ट्रपति की शाही कार में शाही-सम्मान के साथ उनके दादा को गाँव तक पहुँचाया जाए।

क्या वह शहद बहुत कीमती था ? क्या उसमें मोती-हीरे मिले हुए थे? ना, उस शहद के पीछे उसके लाने वाले की भावना थी, जिसने उसे सौ लालों का एक लाल बना दिया।

हमारे देश में भी एक ऐसी ही घटना घटी थी। एक किसान ने

रंगीन सुतलियों से एक खाट बुनी और उसे रेल में रखकर वह दिल्ली लाया। दिल्ली स्टेशन से उस खाट को अपने कंधे पर रखे, वह भारत के प्रधानमंत्री पंडित नेहरू की कोठी पर पहुँचा। पंडित जी कोठी से बाहर आए तो वह खाट उसने उन्हें दी। पंडित जी को देखकर, वह इतना भाव-मुग्ध हो गया कि कुछ कह ही न सका। पंडित जी ने पूछा, ''क्या चाहते हो तुम?''

उसने कहा, ''यही कि आप इसे स्वीकार करें।'' प्रधान मंत्री ने उसका यह उपहार प्यार से स्वीकार किया और अपना एक फोटो दस्तख़त करके उसे स्वयं भी उपहार में दिया। जिस दस्तख़ती फ़ोटो के लिए देश के बड़े-बड़े लोग, विद्वान और धनी तरसते हैं, वह क्या उस मामूली खाट के बदले में दिया गया था? ना, वह तो उस खाट वाले की भावना का ही सम्मान था !

''क्यों जी, हम यह कैसे जान सकते हैं कि हमारा काम देश के अनुकूल है या नहीं ?''

वाह, क्या सवाल पूछा है, आपने! सवाल क्या, बातचीत में आपने तो एक कीमती मोती ही जड़ दिया यह, पर इसके उत्तर में सिर्फ ''हाँ'' या ''ना'' से काम न चलेगा। मुझे थोड़ा विवरण देना पड़ेगा।

हम अपने कार्यों को देश के अनुकूल होने की कसौटी पर कस-कर चलने की आदत डालें, यह बहुत उचित है, बहुत सुंदर है, पर हम इसमें तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक कि हम अपने देश की भीतरी दशा को ठीक-ठीक न समझ लें और उसे हमेशा अपने सामने न रखें।

हमारे देश को दो बातों की सबसे पहले और सबसे ज़्यादा जरूरत है। एक शक्ति-बोध और दूसरा सौंदर्य-बोध ! बस, हम यह समझ लें कि हमारा कोई भी काम ऐसा न हो जो देश में कमजोरी की भावना को बल दे या कुरुचि की भावना को।

''जरा अपनी बात को और स्पष्ट कर दीजिए।'' यह आपकी राय है और मैं इससे बहुत ही खुश हूँ कि आप मुझसे यह स्पष्टता माँग रहे हैं।

क्या आप चलती रेलों में, मुसाफिरखानों में, क्लबों में, चौपालों पर और मोटर-बसों में कभी ऐसी चर्चा करते हैं कि हमारे देश में यह नहीं हो रहा है वह नहीं हो रहा है और यह गड़बड़ है, वह परेशानी है ?

साथ ही क्या इन स्थानों में या इसी तरह के दूसरे स्थानों में आप कभी अपने देश के साथ दूसरे देशों की तुलना करते हैं और इस तुलना में अपने देश को हीन और दूसरे देशों को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं?

यदि इन प्रश्नों का उत्तर हाँ है, तो आप देश के शक्ति-बोध को भयंकर चोट पहुँचा रहे हैं और आपके हाथों देश के सामूहिक मानसिक बल का ह्रास हो रहा है। सुनी है आपने शल्य की बात ? वह महाबली कर्ण का सारथी था। जब भी कर्ण अपने पक्ष की विजय की घोषणा करता, हुंकार भरता, वह अर्जुन की अजेयता का एक हलका-सा उल्लेख कर देता। बार-बार इस उल्लेख ने कर्ण के सघन आत्मविश्वास में संदेह की तरेड़ डाल दी, जो उसके भावी पराजय की नींव रखने में सफल हो गई।

अच्छा, आप इस तरह की चर्चा कभी नहीं करते, तो मैं आपसे दूसरा प्रश्न पूछता हूँ। क्या आप कभी केला खाकर छिलका रास्ते में फेंकते हैं ! अपने घर का कूड़ा बाहर फेंकते हैं ? मुँह में गंदे शब्दों में गंदे भाव प्रकट करते हैं? इधर की उधर, उधर की इधर लगाते हैं? अपना घर, दफ्तर, गली, गंदा रखते हैं ? होटलों, धर्मशालाओं में या दूसरे ऐसे ही स्थानों में, जीनों में, कोनों में पीक थूकते हैं ? उत्सवों, मेलों, रेलो और खेलों में ठेलमठेल करते हैं, निमंत्रित होने पर समय से लेट पहुँचते हैं या वचन देकर भी घर आने वालों को समय पर नहीं मिलते और इसी तरह किसी भी रूप में क्या सुरुचि और सौंदर्य को आपके किसी काम से ठेस लगती है?

यदि आपका उत्तर हाँ है, तो आपके द्वारा देश के सौंदर्य-बोध को भयंकर आघात लग रहा है और आपके द्वारा देश की संस्कृति को गहरी चोट पहुँच रही है।

''क्या कोई ऐसी कसौटी भी बनाई जा सकती है, जिससे देश के नागरिकों को आधार बनाकर देश की उच्चता और हीनता को हम तोल सकें ?''

लीजिए चलते-चलते आपके इस प्रश्न का भी उत्तर दे ही दूँ। इस उच्चता और हीनता की कसौटी है, चुनाव!

जिस देश के नागरिक यह समझते हैं कि चुनाव में किसे अपना मत देना चाहिए और किसे नहीं, वह देश उच्च है और जहाँ के नागरिक

गलत लोगों के उत्तेजक नारों या व्यक्तियों के गलत प्रभाव में आकर मत देते हैं, वह हीन है।

इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि मेरा, यानी हरेक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह जब भी कोई चुनाव हो, ठीक मनुष्य को अपना मत दे और मेरा अधिकार है कि मेरा मत लिए बिना कोई भी आदमी, वह संसार का सर्वश्रेष्ठ महापुरुष ही क्यों न हो, किसी अधिकार की कुर्सी पर न बैठ सके।

प्रश्न-अभ्यास

1. अपने देश के गौरव और सम्मान की रक्षा के लिए किस प्रकार के चरित्र निर्माण की आवश्यकता है?
2. "समाज के बिना मनुष्य को पूर्णता प्राप्त नहीं होती", इस कथन की मीमांसा कीजिए।
3. लाला लाजपतराय के व्यक्तित्व का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
4. लेखक के आनंद की दीवार में किस कारण दरार पड़ गई ?
5. जापानी युवक और एक अन्य देश के युवक के आचरण से उनके देशों के राष्ट्रीय चरित्र के संबंध में क्या धारणा बनती है ?
6. तुर्की के राष्ट्रपति कमालपाशा और भारत के प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू से संबंधित घटनाओं का उल्लेख लेखक के किस मंतव्य को प्रकट करता है ? सही उत्तर छाँटिए :
   (क) कमालपाशा को शहद की और पंडित नेहरू को खाट की जरूरत थी।
   (ख) ये दोनों ही उपहार लाने वाले अपने अपने महान् नेताओं के दर्शन करना चाहते थे।
   (ग) छोटे से छोटा कार्य भी महान् है यदि उसके पीछे अच्छी भावना है।
   (घ) महान् पुरुषों के पास जाने पर कोई न कोई उपहार अवश्य ले जाना चाहिए।
7. शक्ति बोध और सौंदर्य-बोध से लेखक का क्या तात्पर्य है ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
8. देश की शक्ति और सौंदर्य वृद्धि में लेखक ने नागारिकों के क्या कर्तव्य बताए हैं?

9. लेखक ने देश के नागारिकों को आम-चुनावों में किन बातों पर ध्यान देने का सुझाव दिया है ?

10. आशय स्पष्ट कीजिए :

(क) क्या आप सचमुच यह अनुभव .... गौरव नहीं दे सकते।

(ख) इतिहास साक्षी है ..... बेचारा आखिर था कहाँ ?

(ग) मैंने जो कुछ जीवन में ..... अच्छी भावना है।

(घ) युद्ध में जय बोलने का भी महत्त्व है।

(ङ) मानस में भूकंप उठा था।

11. निर्देशानुसार वाक्य परिवर्तन कीजिए :

(क) मैं अपने घर में जन्मा था, अपने घर में पला था।

(साधारण वाक्य)

(ख) मै अपने पड़ोस में खेलकर, पड़ोसिनों की ममता दुलार पा बड़ा हुआ था।

(मिश्रित वाक्य)

(ग) मुझे यह भी अधिकार नहीं कि मैं उस अपमान का बदला लेना तो दूर रहा. उसके लिए कही अपील या दया प्रार्थना ही कर सकूँ।

(कई सरल वाक्यों में)

(घ) [illegible]जी, क्या बात थी उनके व्यक्तित्व की।

(सरल वाक्य)

प्रेमचंद
(1880-1936)

प्रेमचंद का जन्म वाराणसी के समीप लमही नामक ग्राम में हुआ था। उनका वास्तविक नाम धनपतराय था किंतु वे अपनी कहानियाँ उर्दू में नवाबराय और हिन्दी में प्रेमचंद के नाम से लिखते थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा वाराणसी में हुई। उन्होंने क्वीन्स कॉलेज वाराणसी से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। पिता का असामयिक निधन हो जाने के कारण उन्हें प्राइमरी स्कूल में अध्यापकी करनी पड़ी। इलाहाबाद से ट्रेनिंग लेने के कुछ समय बाद वे सब डिप्टी इंस्पेक्टर हो गए। इसी बीच बी. ए. की परीक्षा भी उन्होंने उत्तीर्ण की। सन् 1920 ई. में महात्मा गाँधी के भाषण से प्रभावित होकर उन्होंने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और वे आजीवन स्वतंत्र लेखन का कार्य करते रहे।

प्रेमचंद ने पहले उर्दू में लिखना शुरू किया। **ज़माना** अखबार में उनकी रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। उनके **सोज़े वतन** कहानी-संग्रह को ब्रिटिश सरकार ने ज़ब्त कर लिया था, क्योंकि उसमें देश-भक्ति का प्रखर स्वर था। उनकी पहली हिन्दी कहानी सन् 1915 ई. में **सरस्वती** में प्रकाशित हुई। इसके उपरांत वे अधिकांशतः हिन्दी में ही लिखने लगे।

प्रेमचंद के साहित्य का मुख्य स्वर है – राष्ट्रीय जागरण और समाज-सुधार। शहर के साथ-साथ भारतीय गाँवों और अभिजात वर्ग के साथ-साथ जन-साधारण को अपने साहित्य का केंद्र बनाने वालों में प्रेमचंद हिन्दी के बेजोड़ साहित्यकार हैं। उन्होंने भारतीय जीवन में व्याप्त शोषण, निर्धनता, सामाजिक कुरीतियाँ, नारी की दुर्दशा और वर्ण व्यवस्था की विसंगति आदि विषयों का प्रभावशाली एवं जीवंत चित्रण किया है। उनकी भाषा बड़ी सजीव, मुहावरेदार और बोल-चाल के

निकट है। हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने में प्रेमचंद का विशेष योगदान है।

प्रेमचंद मुख्यतः कथाकार हैं। उन्होंने लगभग तीन सौ कहानियों की रचना की है, जो **मानसरोवर** नाम से आठ भागों में प्रकाशित हैं। साथ ही **गुप्तधन** में भी उनकी कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं- **सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गबन कर्मभूमि** और **गोदान**।**कर्बला, संग्राम** और **प्रेम की वेदी** उनके नाटक हैं। उनके साहित्यिक निबंध कुछ विचार नामक पुस्तक में संकलित हैं। सामाजिक और राजनीतिक निबंधों का संग्रह **विविध प्रसंग** नाम से तीन भागों में प्रकाशित है।

विवेकानंद पाठ में लेखक ने .विवेकानंद को भारतीय नवजागरण की शंख-ध्वनि करने वाले महापुरुषों में अद्वितीय बतलाया है। उनकी आध्यात्मिक भूख और साधनाओं का उल्लेख करते हुए उन्हें अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी देशों में भारतीयता की ध्वजा फहराने वाला बताया है और स्वामी जी की इस धारणा को कि ''मनुष्य सेवा ईश-भक्ति का सबसे बड़ा साधन है'' उजागर किया है।

5. स्वामी विवेकानंद

भारत के नवजागरण की शंख-ध्वनि करने वाले महापुरुषों में स्वामी विवेकानंद का स्थान अद्वितीय है। उनका दिव्य संदेश वस्तुतः भारत के लिए ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए नए आध्यात्मिक उत्थान का उद्घोष था।

स्वामी विवेकानंद जी का जन्म सन् 1863 ई. में हुआ। बचपन में उनका नाम नरेंद्र नाथ था। वे प्रारंभ से ही होनहार दिखाई देते थे। उन्होंने अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा पाई और सन् 1884 ई. में बी. ए. की डिग्री प्राप्त की। बचपन से ही उनके अंदर एक प्रबल आध्यात्मिक भूख थी। कुछ दिनों तक वे ब्रह्म समाज के अनुयायी रहे। वे नित्य प्रार्थना में सम्मिलित होते। गला बहुत ही अच्छा होने के कारण कीर्तन-समाज में उनका बड़ा आदर था। पर ब्रह्म समाज के सिद्धांत उनकी प्यास न बुझा सके। अतः सत्य की खोज में वे इधर-उधर भटकने लगे। उन दिनों स्वामी रामकृष्ण परमहंस के प्रति लोगों की बड़ी श्रद्धा थी। नवयुवक नरेंद्र नाथ ने भी उनके सत्संग से लाभ उठाना प्रारंभ किया और धीरे-धीरे उनके उपदेशों से वे इतने प्रभावित हुए कि उनकी भक्त-मंडली में सम्मिलित हो गए। उस सच्चे गुरु से अध्यात्म तत्व और वेदांत-रहस्य पाकर युवक नरेंद जी की आध्यात्मिक पिपासा शांत हुई। उनकी गुरु भक्ति गुरु पूजा की सीमा तक पहुँच गई थी। जब कभी वे परमहंस जी की चर्चा करते तो एक-एक शब्द से श्रद्धा और सम्मान टपकता।

स्वामी विवेकानंद ने गुरुदेव के प्रथम दर्शन का वर्णन इस प्रकार किया है :

'देखने में वे बिल्कुल साधारण आदमी मालूम होते थे। उनके रूप में कोई विशेषता न थी। बोली बहुत सरल और सीधी थी। मैंने म

मैं सोचा कि क्या यह संभव है कि यह सिद्ध पुरुष हों। मैं धीरे-धीरे उनके पास पहुँचा और उनसे वे प्रश्न पूछे जो मैं अक्सर औरों से पूछा करता था "महाराज, क्या आप ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं?" उन्होंने जवाब दिया, "हाँ।" मैंने फिर पूछा, "क्या आप उसका अस्तित्व सिद्ध कर सकते हैं ?" जवाब मिला, "हाँ।" मैंने पूछा "कैसे?" जवाब मिला, "मैं उसे ठीक वैसे ही देखता हूँ जैसे तुम्हें।"

परमहंस जी की वाणी में बिजली की-सी शक्ति थी जो संशयात्मा को तत्क्षण ठीक रास्ते पर लगा देती थी और यही प्रभाव आगे चल कर स्वामी विवेकानंद जी की वाणी और दृष्टि में भी उत्पन्न हो गया था।

नरेंद्र की माता उच्चाकांक्षिणी स्त्री थीं। उनकी इच्छा थी कि मेरा लड़का वकील हो, अच्छे घर में उसका ब्याह हो और दुनिया के सुख भोगे। जब रामकृष्ण परमहंस के प्रभाव में आकर नरेंद्र नाथ ने संन्यास लेने का निश्चय किया तो उनकी माता परमहंस जी की सेवा में उपस्थित हुईं और अनुनय-विनय की कि मेरे बेटे को जोग न दीजिए। पर जिस हृदय ने शाश्वत प्रेम और आत्मानुभूति के आनंद का स्वाद पा लिया हो उसे लौकिक सुख-भोग कब अपनी ओर खींच सकते हैं। नरेंद्र नाथ की वैराग्य-वृत्ति अधिकाधिक बढ़ती ही गई।

रामकृष्ण परमहंस की महासमाधि के बाद उनके शिष्यों के नेतृत्व का भार नरेंद्र पर ही आया। तभी उन्होंने तथा उनके साथियों ने संन्यास का व्रत लिया। उसके बाद स्वामी जी उच्च आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए हिमालय की ओर चले गए। कई वर्षों तक वे तपस्या और चित्त-शुद्धि की साधना में लगे रहे। वे सिद्ध महात्माओं की खोज करते और उनके सत्संग का लाभ उठाते। सत्य की खोज करने के लिए उन्होंने सभी तरह के कष्ट प्रसन्नता से सहे। स्वामी जी ने स्वयं कहा है कि मुझे दो-दो, तीन-तीन दिन तक खाना न मिलता था, अक्सर ऐसे स्थान पर नंगे बदन सोया हूँ जहाँ की सरदी का अंदाजा थर्मामीटर से भी नहीं लग सकता। कितनी ही बार शेर-बाघ और दूसरे शिकारी जानवरों का सामना हुआ। पर राम के प्यारे को इन बातों का क्या डर।

पहाड़ से उतरकर बंगाल, संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश), राजपूताना (राजस्थान), बंबई आदि का उन्होंने भ्रमण किया। जो जिज्ञासु जन श्रद्धावश उनकी सेवा में उपस्थित होते थे उन्हें वे धर्म और नीति के

तत्वों का उपदेश देतें थे और जिसे विपदग्रस्त देखते उसको सांत्वना देते थे। मद्रास उस समय नास्तिकों और जड़वादियों का केन्द्र बन रहा था। अंग्रेजी विश्वविद्यालयों से निकले हुए नवयुवक, जो अपने धर्म और समाज़-व्यवस्था के ज्ञान से बिल्कुल कोरे थे, खुलेआम ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार किया करते थे। स्वामी जी यहाँ काफी समय तक रहे और कितने ही होंनहार नौजवानों को धर्म-परिवर्तन से रोका तथा जड़वाद के जाल से बचाया। कितनी ही बार लोगों ने उनसे वाद विवाद किया, उनकी खिल्ली उड़ाई, पर वे अपने वेदांत के रंग में इतना डूबे हुए थे कि उन्हें किसी की हँसी-मजाक की तनिक भी परवाह न थी। धीरे-धीरे उनकी ख्याति नवयुवक मंडली से बाहर निकलकर कस्तूरी की गंध की तरह चारों ओर फैलने लगी। बड़े-बड़े धनी-मानी लोग उनके भक्त और शिष्य बन गए और उनसे नीति तथा वेदांत तत्व के उपदेश लिए। जस्टिस सुब्रह्मण्यम् अय्यर, महाराजा रामनंद (मद्रास) और महाराज खेतड़ी (राजपूताना) उनके प्रमुख शिष्यों में से थे।

जब स्वामी जी मद्रास में थे तब उनको अमेरिका में सर्व-ध[illegible] सम्मेलन के आयोजन का समाचार मिला। वें तुरंत उसमें सम्मिलित हो[illegible] को तैयार हो गए। हिन्दू धर्म का उनसे बड़ा ज्ञानी तथा वक्ता और [illegible] ही कौन ? भक्त मंडली की सहायता से वे इस पवित्र यात्रा पर रवा[illegible] हो गए। उनकी यात्रा अमरीका के इतिहास की अमर घटना है। [illegible] पहला अवसर था कि कोई पश्चिमी जाति दूसरी जातियों के [illegible] विश्वासों के स्वागत के लिए तैयार हुई हो।

अमरीका पहुँचकर उन्हें मालूम हुआ कि अभी सम्मेलन होने[illegible] बहुत देर है। उनके ये दिन बड़े कष्ट में बीते। निर्धनता की यह दशा [illegible] कि पास में ओढ़ने-बिछाने तक को काफी न था। पर उनकी संतोषवृ[illegible] इन सब कष्ट-कठिनाइयों पर विजयी हुई। अंत में बड़ी प्रतीक्षा के [illegible] नियत तिथि आ पहुँची। संसार के विभिन्न धर्मों ने अपने अपने प्रतिनि[illegible] भेजे थे और यूरोप के बड़े-बड़े पादरी और धर्मशास्त्र के आचार्य ह[illegible] की संख्या में उपस्थित थे। पहले तो किसी ने उनकी ओर ध्यान [illegible] दिया पर सभापति ने बड़ी उदारता के साथ उनकी प्रार्थना स्वीकार [illegible] ली, और वह समय आ गया कि स्वामी जी श्रीमुख से कुछ कहें। स्वा[illegible] जी ने ऐसी पांडित्यपूर्ण, ओजस्वी और धारा प्रवाह वक्तृता दी कि [illegible]

मंडली मंत्र-मुग्ध सी हो गई। यह पराधीन भारत का हिन्दू और ऐसा विद्वत्तापूर्ण भाषण, किसी को विश्वास न होता था। आज भी उनके उस भाषण को पढ़ने से भावावेश की अवस्था हो जाती है। वास्तव में उसमें भगवद्गीता और उपनिषदों के ज्ञान का निचोड़ है । उसका सारांश यह है:

"हिन्दू धर्म का आधार किसी विशेष सिद्धांत को मानना या कुछ विशेष विधि-विधानों का पालन करना नहीं। हिन्दू का हृदय शब्दों और सिद्धांतों से तृप्ति-लाभ नहीं कर सकता। अगर कोई ऐसा लोक है जो हमारी स्थूल दृष्टि के लिए अगोचर है, तो हिन्दू उस दुनिया की सैर करना चाहता है। अगर कोई ऐसी सत्ता हैं जो भौतिक नहीं है, कोई ऐसी सत्ता है जो न्याय-रूप, दया-रूप और सर्वशक्तिमान है, तो हिन्दू उसे अपनी अंतर्दृष्टि से देखना चाहता है। उसके संशय तभी छिन्न होते हैं जब वह उसे स्वयं देख लेता है।"

कर्म को केवल कर्तव्य समझकर करना, उसमें फल या सुख-दुःख की भावना न रखना ऐसी बात थी जिससे पश्चिम वाले अब तक सर्वथा अपरिचित थे। स्वामी जी के ओजस्वी भाषणों और सच्चाई से भरे उपदेशों से लोग इतने प्रभावित हुए कि अमरीका के अखबार बड़ी श्रद्धा और सम्मान के शब्दों में स्वामी जी की बड़ाई छापने लगे। उनकी वाणी में वह दिव्य प्रभाव था कि सुनने वाले आत्म-विस्मृत हो जाते थे।

अमरीका में स्वामी जी के भक्तों की संख्या दिनों-दिन बढ़ने लगी। चारों ओर से जिज्ञासु उनके पास पहुँचते और अपने-अपने नगर में पधारने का अनुरोध करते। स्वामी जी को अक्सर दिन-दिन भर व्यस्त रहना पड़ता। बड़े-बड़े प्रोफ़ेसरों और विद्वानों ने आकर उनके उपदेशों को अपने हृदय में स्थान दिया और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

स्वामी जी अमरीका में करीब तीन साल रहे और वेदांत का प्रचार करते रहे। इसके बाद उन्होंने इंगलैंड की यात्रा की। उनकी ख्याति वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थी। अंग्रेज उस समय भारत के शासक थे। उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने में स्वामी जी को प्रारंभ में कुछ कठिनाई हुई पर उनका अद्भुत अध्यवसाय और प्रबल संकल्प अंत में इन सब बाधाओं पर विजयी हुआ। वहाँ ऐसे-ऐसे वैज्ञानिक, जो खाना खाने के लिए भी प्रयोगशाला न छोड़ पाते थे आपका भाषण सुनने के लिए घंटों

पहले सभा में पहुँच जाते और प्रतीक्षा में बैठे रहते। उन्होंने वहाँ तीन
महत्त्वपूर्ण भाषण दिए जिनसे उनकी विद्वत्ता का सिक्का उन सबके दिल
पर बैठ गया। सब पर प्रकट हो गया कि जड़वाद में यूरोप चाहे भारत
कितना ही आगे क्यों न हो पर अध्यात्म का नेतृत्व भारतीयों के हाथ
ही है। वे करीब एक साल तक वहाँ रहे। अनेकानेक सभा-समितियों
कॉलेजों और क्लबों से उनके पास निमंत्रण आते थे। उनकी ओजम
वक्तृताओं का यह प्रभाव हुआ कि बिशपों और पादरियों ने भी गिरजों
वेदांत पर भाषण दिलवाए। धीरे-धीरे यहाँ भी स्वामी जी
भक्त-मंडली काफी बड़ी हो गई। बहुत से लोग, जो अपनी रुचि
आध्यात्मिक भोजन न पाकर धर्म से विरक्त हो रहे थे, वेदांत पर ल
हो गए और स्वामी जी में उनकी इतनी श्रद्धा हो गई कि वहाँ से जब
चले तो कई अंग्रेज शिष्य उनके साथ हो लिए। इनमें कुमारी नोबल
थीं, जो बाद में भगिनी निवेदिता के नाम से प्रसिद्ध हुईं। स्वामी जी
अंग्रेजों के रहन-सहन और चरित्र-स्वभाव को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि
देखा-समझा। इस अनुभव की चर्चा करते हुए एक भाषण में उन्होंने
है कि यह क्षत्रियों और वीर पुरुषों की जाति है।

16 सितंबर सन् 1896 ई. को स्वामी जी लगभग चार वर्ष
प्रवास के बाद स्वदेश के लिए रवाना हुए। भारत के छोटे-बड़े सब
उनके यश को सुन-सुनकर उनके दर्शन के लिए उत्कंठित हो रहे
उनके स्वागत और अभ्यर्थना के लिए नगर-नगर में कमेटियाँ बनने ल
स्वामी जी जब जहाज से कोलम्बो में उतरे तो जन-साधारण ने
उत्साह और उल्लास से उनका स्वागत किया, वह दर्शनीय था। को
से अल्मोड़े तक जिस-जिस नगर में वे पधारे, लोगों ने राह में
बिछा दीं। अमीर-गरीब, छोटे-बड़े सबके हृदय में उनके लिए ए
आदर-सम्मान था। यूरोप में बड़े विजेताओं की जो अभ्यर्थना हो
है, उससे कई गुनी अधिक भारत में स्वामी जी की हुई। उनके दर्
लिए लाखों की भीड़ जमा हो जाती थी और लोग उनकी झलक पा
लिए मंज़िलें तय करके आते थे।

स्वामी जी का रूप बड़ा सुंदर और भव्य था। उनका शरीर
और सुदृढ़ था, दृष्टि में बिजली का असर था और मुख-मंडल
आत्मतेज का आलोक। कठोर बात शायद उनकी जबान से कभी

निकली। विश्वविख्यात और विश्ववंद्य होते हुए भी उनका स्वभाव अति सरल और व्यंवहार अति विनम्र था। उनका पांडित्य अगाध था। वे अंग्रेजी के पूर्ण पंडित और अपने समय के सर्वश्रेष्ठ वक्ता थे। संस्कृत-साहित्य और दर्शन के वे विद्वान थे और जर्मन, हिब्रू, ग्रीक, फ्रेंच आदि विभिन्न भाषाओं पर उनका अधिकार था। वे केवल चार घंटे सोते थे। प्रातः चार बजे उठकर वे जप-ध्यान में लग जाते। प्राकृतिक दृश्यों के वे बड़े प्रेमी थे। भोर में जप-तप से निवृत्त होकर मैदान में निकल जाते और प्रकृति-सुषमा का आनंद लेते। उनकी वाणी में ऐसा प्रभाव था कि उनके भाषण श्रोताओं के हृदयों पर पत्थर की लकीर बन जाते थे। कहने का ढंग और भाषा बहुत सरल होती थी पर उन सीधे- सादे शब्दों में ऐसा आध्यात्मिक भाव भरा होता था कि सुनने वाले तल्लीन हो जाते थे।

स्वामी जी अपने देश के आचार-व्यवहार, रीति-नीति, साहित्य और दर्शन, सामाजिक जीवन, उसके पूर्वकाल के महापुरुषों, इन सबको श्रद्धायोग्य और सम्मान्य मानते थे। उनके एक भाषण का निम्नलिखित अंश सोने के अक्षरों में लिखा जाने योग्य है :

"प्यारे देशवासियो, पुनीत आर्यावर्त के बसने वाले, क्या तुम अपनी इस तिरस्करणीय भीरुता से वह स्वाधीनता प्राप्त कर सकोगे, जो केवल वीर पुरुषों का अधिकार है ? हे भारत निवासी भाइयो ! अच्छी तरह याद रखो कि सीता, सावित्री और दमयंती तुम्हारी जाति की देवियाँ हैं। हे वीर पुरुषो ! मर्द बनो और ललकार कर कहो कि मैं भारतीय हूँ, मैं भारत का रहने वाला हूँ। हर-एक भारतवासी चाहे वह कोई भी हो, मेरा भाई है। अपढ़ भारतीय, निर्धन भारतीय, ऊँची जाति का भारतीय, नीची जाति का भारतीय सब मेरे भाई हैं। भारत मेरा जीवन, मेरा प्राण है। भारत के देवता मेरा भरण-पोषण करते हैं। भारत मेरे बचपन का हिंडोला, मेरे यौवन का आनंद-लोक और मेरे बुढ़ापे का बैकुंठ है।"

कलकत्ते में अध्यापन और उपदेश में अत्यधिक श्रम करने के कारण स्वामीजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया और जलवायु-परिवर्तन के लिए उन्हें दार्जिलिंग जाना पड़ा। वहाँ से वे अल्मोड़ा गए। पर स्वामी जी ने तो वेदांत के प्रचार का व्रत ले रखा था, उनको खाली बैठे कब चैन आ

सकता था।ज्यों ही तबीयत जरा सँभली, वे स्यालकोट पधारे और वहाँ से लाहौर वालों की भक्ति ने उन्हें अपने यहाँ खींच बुलाया। इन दोनों स्थानों पर उनका बड़े उत्साह से स्वागत-सत्कार हुआ। उन्होंने अपनी अमृतवाणी से श्रोताओं के अंतःकरणों में ज्ञान की ज्योति जगा दी। लाहौर से वे कश्मीर गए और वहाँ से वे राजपूताने का भ्रमण करते हुए कलकत्ता लौट आए। इसी बीच उन्होंने दो मठ स्थापित किए। इसके कुछ दिन बाद उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस संस्था का उद्‌देश्य लोक-सेवा करते हुए वेदांत का प्रसार करना है। इसकी शाखाएं भारत के हर भाग में तथा विदेशों में विद्यमान हैं और वे जनता का बहुत उपकार कर रही हैं।

1897 ई. में भारत में महामारी का प्रकोप हुआ। स्वामी जी ने देशसेवाव्रती संन्यासियों की एक छोटी-सी मंडली बना दी थी। वे सब स्वामी जी के निरीक्षण में तन-मन से दीन-दुखियों की सेवा में लग गए। मुर्शिदाबाद, ढाका, कलकत्ता, मद्रास आदि में सेवाश्रम खोले गए। वेदांत के प्रचार के लिए जगह-जगह विद्यालय भी स्थापित किए गए। कई अनाथालय भी खुले। स्वामी जी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ रहा था, फिर भी वे स्वयं घर-घर में घूम-घूमकर पीड़ितों को आश्वासन तथा आवश्यक सहायता देते रहते थे। ऐसे प्लेग-पीड़ितों की सहायता करना, जिनसे डाक्टर लोग भी भागते थे, इन्हीं देशभक्तों का काम था।

अधिक श्रम के कारण स्वामी जी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया। इन दिनों आप अक्सर समाधि की अवस्था में रहा करते थे और अपने भक्तों से कहा करते थे कि अब मेरे महाप्रस्थान का समय बहुत समीप है। 4 जुलाई 1902 ई. को एकाएक आप समाधिस्थ हो गए। सवेरे दो घंटे समाधि में रहे। दोपहर को शिष्यों को पाणिनीय व्याकरण पढ़ाया और तीसरे पहर दो घंटे तक वेदोपदेश करते रहे। इसके बाद वे टहलने निकले। शाम को लौटे तो थोड़ी देर माला जपने के बाद फिर समाधिस्थ हो गए और उस समाधि की अवस्था में ही पंचभौतिक शरीर का त्याग कर परमधाम को सिधार गए।

स्वामी जी आज हमारे बीच में नहीं हैं, पर आध्यात्मिक ज्ञान की जो मशाल वे जला गए हैं वह सदा के लिए संसार को आलोकित करती रहेगी।

प्रश्न-अभ्यास

1. सत्य की खोज में भटकते हुए नरेंद्र नाथ रामकृष्ण परमहंस की किन विशेषताओं से प्रभावित हो उनके अनुयायी बन गए?
2. अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए स्वामी विवेकानंद की साधनाओं का उल्लेख कीजिए।
3. कर्तव्य-अकर्तव्य के संबंध में स्वामी जी ने पश्चिम को कौन-सा नया ज्ञान दिया ?
4. वेदांत के किन्हीं ऐसे दो सिद्धांतों का उल्लेख कीजिए जिनका स्वामी जी ने पश्चिम में प्रचार किया।
5. स्वामी जी की प्रकृति और प्रवृत्तियों का सौ शब्दों में वर्णन कीजिए।
6. मनुष्य-सेवा को स्वामी जी ने ईश-भक्ति का सबसे बड़ा साधन माना था। इस सिद्धांत को क्रियान्वित करने के लिए उन्होंने क्या किया ?
7. पश्चिमी देशों में स्वामी जी ने अपने व्यक्तित्व,विद्वत्ता और भारतीयता का जो प्रभाव छोड़ा, उसका वर्णन कीजिए।
8. विवेकानंद ने देशवासियों को जो संदेश दिया उसे अपने शब्दों में लिखकर बताइए कि देश में नवजागरण लाने में उसका क्या योगदान है।
9. भारत के नवजागरण की शंखध्वनि करने वाले महापुरुषों में विवेकानंद का स्थान अद्वितीय है। इस कथन की विस्तृत विवेचना कीजिए।
10. निम्नांकित की व्याख्या कीजिए :
    (क) "पुनीत आर्यावर्त के ....अधिकार है?"
    (ख) "भारत मेरा जीवन ....बैकुंठ है।"
    (ग) "कर्म को केवल कर्तव्य समझकर करना, उसमें फल या दुःख-सुख की भावना न रखना।'
    (घ) "हिन्दू धर्म .... कर सकता।"
11. उपयुक्त विराम चिह्न लगाइए :

महाराज क्या आप ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं उन्होंने जवाब दिया हाँ मैंने फिर पूछा क्या आप उसका अस्तिवत्व सिद्ध कर सकते हैं जवाब मिला हाँ मैंने पूछा कैसे जवाब मिला मैं उसे ठीक वैसे ही देखता हूँ जैसे तुम्हें

राजेन्द्र प्रसाद
(1884-1963)

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का जन्म जिला छपरा (बिहार) के जीरादेई ग्राम हुआ था। उन्होंने कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज से एम. ए. और ए एल. बी. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। वे बड़े मेधावी छात्र थे। स परीक्षाओं में उन्होंने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

मुजफ्फरपुर के एक कॉलेज में कुछ दिनों तक अध्यापन-का करने के पश्चात् सन् 1911 ई. में राजेंद्र बाबू ने कलकत्ता हाईकोर्ट वकालत आरंभ की। पटना हाईकोर्ट स्थापित होने पर 1916 ई. में वहाँ चले आए। थोड़े ही दिनों में उनकी गणना प्रथम श्रेणी के वकीलों होने लगी। चंपारन के नील-सत्याग्रह के प्रसंग में वे महात्मा गांधी संपर्क में आए। सन् 1920 ई. में उन्होंने वकालत छोड़ दी और वे कां में सम्मिलित होकर पूर्ण रूप से देश-सेवा के कार्य में लग गए। वे बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति चुने गए और स्वतंत्रता-प्रा के बाद 12 वर्ष (1950-1962) तक भारत गणराज्य के राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू के व्यक्तित्व की निजी विशेषता थी कि वे राजनीति आकंठ डूबने के उपरांत भी अजातशत्रु बन रहे और राष्ट्रपति भवन वैभव के बीच भी सीधे-सादे ग्रामवासी।

सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विषयों पर हिन्दी, अंग्रेजी में ही राजेंद्र बाबू बराबर पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे। वे हि साहित्य सम्मेलन के सभापति भी रहे। **भारतीय शिक्षा, गांधीजी की साहित्य, शिक्षा और संस्कृति, आत्मकथा** आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ

भारतीय संस्कृति में राजेंद्र बाबू ने हमारी संस्कृति की विविध एकता, अहिंसा, भोग में भी त्याग-भावना, नैतिक चेतना विशिष्टताओं को बड़े ही सटीक एवं संगत रूप में उभारा है।

6. भारतीय संस्कृति

कोई विदेशी, जो भारत से बिल्कुल अपरिचित हो एक छोर से दूसरे छोर तक सफ़र करे तो उसको इस देश में इतनी विभिन्नताएँ देखने में आएँगी कि वह कह उठेगा कि यह एक देश नहीं, बल्कि कई देशों का एक समूह है, जो एक-दूसरे से बहुत बातों में और विशेष करके ऐसी बातों में जो आसानी से आँखों के सामने आती हैं, बिल्कुल भिन्न है। प्राकृतिक विभिन्नताएँ भी इतनी और इतने प्रकार की और इतनी गहरी नजर आएँगी जो किसी भी एक महाद्वीप के अंदर ही नजर आ सकती हैं। हिमालय की बर्फ से ढकी हुई पहाड़ियाँ एक छोर तक मिलेंगी और जैसे-जैसे वह दक्षिण की ओर बढ़ेगा गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र से प्लावित समतलों को छोड़कर फिर विंध्य, अरावली, सतपुड़ा, नीलगिरि की श्रेणियों के बीच समतल हिस्से रंग-बिरंगे देखने में आएँगे। पश्चिम से पूर्व तक जाने में भी उसे इस प्रकार की विभिन्नताएँ देखने को मिलेंगी। हिमालय की सरदी के साथ-साथ, जो साल में कभी भी मनुष्य को गरम कपड़ों से और आग से छुटकारा नहीं देनी, समतल प्रदेशों की जलती हुई लू और कन्याकुमारी का वह सुखद मौसम, जिसमें न कभी सरदी होती है और न गरमी देखने को मिलेगी। अगर असम की पहाड़ियों में वर्ष में तीन सौ इंच वर्षा मिलेगी, तो जैसलमेर की तप्तभूमि भी मिलेगी जहाँ साल में दो-चार इंच भी वर्षा नहीं होती। कोई ऐसा अन्न नहीं है जो यहाँ उत्पन्न न किया जाता हो। कोई ऐसा फल नहीं, जो यहाँ पैदा नहीं किया जा सके। कोई ऐसा खनिज पदार्थ नहीं, जो यहाँ के भू-गर्भ में न पाया जाता हो और न कोई ऐसा वृक्ष अथवा जानवर है जो यहाँ फैले हुए जंगलों में न मिले। यदि इस सिद्धांत को देखना हो कि जलवायु का असर इनसान के रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, शरीर, और मस्तिष्क

पर पड़ता है तो उसका जीता-जागता सबूत भारत में बसने वाले भिन्न-भिन्न प्रदशों के लोग देते हैं। इसी तरह मुख्य-मुख्य भाषाएँ भी कई प्रचलित हैं और बोलियों की तो कोई गिनती ही नहीं, क्योंकि यहाँ एक कहावत मशहूर है :

'कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी'

भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वाले भी यहाँ पाए जाते हैं और जिस तरह यहाँ की बोलियों की गिनती आसान नहीं, उसी तरह यहाँ भिन्न-भिन्न धर्मों और संप्रदायों की भी गिनती आसान नहीं। इन विभिन्नताओं को देखकर अगर अपरिचित आदमी घबड़ाकर कह उठे कि यह एक देश नहीं, अनेक देशों का एक समूह है, यह एक जाति नहीं, अनेक जातियों का समूह है तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि ऊपर से देखने वाले को, जो गहराई में नहीं जाता, विभिन्नता ही देखने में आएगी। पर विचार करके देखा जाए तो इन विभिन्नताओं की तह में एक ऐसी समता और एकता फैली हुई है, जो अन्य विभिन्नताओं को ठीक उसी तरह पिरो लेती है और पिरोकर एक सुंदर समूह बना देती है जैसे रेशमी धागा भिन्न-भिन्न प्रकार की और विभिन्न रंगों की सुंदर मणियों अथवा फूलों को पिरोकर एक सुंदर हार तैयार कर देता है, जिसकी प्रत्येक मणि या फूल दूसरों से न तो अलग है और न हो सकता है। केवल अपनी सुंदरता से लोगों को मोहता ही नहीं, बल्कि दूसरों की सुंदरता को वह स्वयं सुशोभित भी करता है। यह केवल काव्य की भावना नहीं है बल्कि एक ऐतिहासिक सत्य है, जो हजारों वर्षों से अलग-अलग अस्तित्व रखते हुए अनेकानेक जल प्रपातों और प्रवाहों का संगम-स्थल बनकर एक प्रकांड और प्रगाढ़ समुद्र के रूप में भारत में व्याप्त है जिसे भारतीय संस्कृति का नाम दे सकते हैं। इन अलग-अलग नदियों के उद्गम भिन्न-भिन्न हैं और हो रहे हैं। इनकी धाराएँ भी अलग-अलग बही हैं और प्रदेश के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्न और फल-फूल पैदा करती रही हैं। पर सबमें एक ही शुद्ध, सुंदर, स्वस्थ और शीतल जल बहता रहा है, जो उद्गम और संगम में एक ही हो जाता है।

आज हम इसी निर्मल, शुद्ध, शीतल और स्वस्थ अमृत की तलाश में हैं और हमारी इच्छा, अभिलाषा और प्रयत्न यह है कि इन सभी अलग-अलग बहती हुई नदियों में वह अभी भी उसी तरह बहता रहे

और इनको वह अमर तत्व देता रहे, जो जमाने के हजारों थपेड़ों को बरदाश्त करता हुआ भी आज हमारे अस्तित्व को कायम रखे हुए है और रखेगा, जैसा कि हमारे कवि इकबाल कह गए हैं :

बाकी मगर है अब तक नामोनिशां हमारा,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा।

यह एक नैतिक और आध्यात्मिक स्रोत है जो अनंत काल से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संपूर्ण देश में बहता रहा है और कभी-कभी मूर्त रूप होकर हमारे सामने आता रहा है। यह हमारा सौभाग्य रहा है कि हमने ऐसे ही एक मूर्त रूप को अपने बीच चलते-फिरते हँसते-रोते भी देखा है और जिसने् अमरत्व की याद दिलाकर हमारी सूखी हड्डियों में नई मज्जा डाल हमारे मृतप्राय शरीर में नए प्राण फूँके और मुरझाए हुए चेहरों व दिलों को फिर खिला दिया। वह अमरत्व सत्य और अहिंसा का है जो केवल इसी देश के लिए नहीं, आज मानव मात्र के जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक हो गया है। हम इस देश में प्रजातंत्र की स्थापना कर चुके हैं जिसका अर्थ है व्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता, जिसमें वह अपना पूरा विकास कर सके और साथ ही सामूहिक और सामाजिक एकता भी। व्यक्ति और समाज के बीच में विरोध का आभास होता है। व्यक्ति अपनी उन्नति और विकास चाहता है और यदि एक की उन्नति और विकास दूसरे की उन्नति और विकास में वाधक हो, तो संघर्ष पैदा होता है और यह संघर्ष तभी दूर हो सकता है जब सबके विकास के पथ अहिंसक हों। हमारी सारी संस्कृति का मूलाधार इसी अहिसा-तत्त्व पर स्थापित रहा है। जहाँ-जहाँ हमारे नैतिक सिद्धांतों का वर्णन आया है, अहिंसा को ही उनमें मुख्य स्थान दिया गया है। अहिंसा का दूसरा नाम या दूसरा रूप त्याग है और हिंसा का दूसरा रूप या दूसरा नाम स्वार्थ है, जो प्रायः भोग के रूप में हमारे सामने आता है। पर हमारी सभ्यता ने तो भोग भी त्याग से ही निकाला है और भोग भी त्याग में ही पाया है। उपनिषद् कहता है- ''तेन त्यक्तेन भुंजीथा'' इसी के द्वारा हम व्यक्ति व्यक्ति के बीच का विरोध, व्यक्ति और समाज के बीच का विरोध, समाज और समाज के बीच का विरोध, देश और देश के बीच्र का विरोध मिटाना चाहते हैं। हमारी सारी नैतिक चेतना इसी तत्त्व से ओतप्रोत है। इसलिए

हमने भिन्न-भिन्न विचार-धाराओं को स्वच्छंदता पूर्वक अपने-अपने रास्ते बहने दिया। भिन्न-भिन्न धर्मों और संप्रदायों को स्वतंत्रतापूर्वक पनपने और भिन्न-भिन्न भाषाओं को विकसित और प्रस्फुटित होने दिया। भिन्न-भिन्न देशों की संस्कृतियों को अपने में मिलाया और अपने को उनमें मिलने दिया। देश और विदेश में एक सूत्रता तलवार के जोर से नहीं, बल्कि प्रेम और सौहार्द से स्थापित की । दूसरों के हाथों और पैरों पर, घर और संपत्ति पर जबरदस्ती कब्जा नहीं किया, उनके हृदयों को जीता और इसी वजह से प्रभुत्व जो चरित्र और चेतना का प्रभुत्व है, आज भी बहुत अंशों में कायम है, जबकि हम स्वयं उस चेतना को बहुत अंशों तक भूल गए हैं और भूलते जा रहे हैं।

वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास के उद्दंड परिणामों से अपने को सुरक्षित रखकर हम उनका उपयोग अपनी रीति से किस प्रकार करें- इस बारे में दो बातों का हमें बराबर ध्यान रखना है। पहली बात तो यह है कि हर प्रकार की प्रकृतिजन्य और मानवकृत विपदाओं के पड़ने पर भी हम लोगों की सृजनात्मक शक्ति कम नहीं हुई। हमारे देश में साम्राज्य बने और मिटे, विभिन्न संप्रदायों का उत्थान-पतन हुआ, हम विदेशियों से आक्रांत और पद-दलित हुए, हम पर प्रकृति और मानवों ने अनेक बार मुसीबतों के पहाड़ ढा दिए, पर फिर भी हम लोग बने रहे, हमारी संस्कृति बनी रही और हमारा जीवन एवं सृजनात्मक शक्ति बनी रही । हम अपने दुर्दिनों में भी ऐसे मनीषियों और कर्मयोगियों को पैदा कर सके जो संसार के इतिहास के किसी युग के अत्यंत उच्च आसन के अधिकारी होते। अपनी दासता के दिनों में हमने गांधी जैसे कर्मठ, धर्मनिष्ठ क्रांतिकारी को, रवींद्र जैसे मनीषी कवि को और अरविंद तथा रमण महर्षि जैसे योगियों को पैदा किया और उन्हीं दिनों में हमने ऐसे अनेक उद्भट विद्वान और वैज्ञानिक पैदा किए जिनका सिक्का संसार मानता है। जिन हालतों में पड़कर संसार की प्रसिद्ध जातियाँ मिट गईं, उनमें हम न केवल जीवित ही रहे वरन् अपने आध्यात्मिक और बौद्धिक गौरव को बनाए रख सके। उसका कारण यही है कि हमारी सामूहिक चेतना ऐसे नैतिक आधार पर ठहरी हुई है जो पहाड़ों से भी मजबूत, समुद्रों से भी गहरी और आकाश से भी अधिक व्यापक है।

दूसरी बात जो इस संबंध में विचारणीय है, वह यह है कि

संस्कृति अथवा सामूहिक चेतना ही हमारे देश का प्राण है। इसी नैतिक चेतना के सूत्र से हमारे नगर और ग्राम, हमारे प्रदेश और संप्रदाय, हमारे विभिन्न वर्ग और जातियाँ आपस में बँधी हुई हैं। जहाँ उनमें और सब तरह की विभिन्नताएँ हैं, वहाँ उन सबमें यह एकता है। इसी बात को ठीक तरह से पहचान लेने से बापू ने जन-साधारण को बुद्धिजीवियों के नेतृत्व में क्रांति के लिए तत्पर करने के लिए इसी नैतिक चेतना का सहारा लिया था। अहिंसा, सेवा और त्याग की बातों से जन-साधारण का हृदय इसलिए आंदोलित हो उठा क्योंकि उन्हीं से तो वह शताब्दियों से प्रभावित और प्रेरित रहा। जन-साधारण के हृदय में धड़कती चेतना को क्रांति की शक्ति बनाने में ही बापू की दूरदर्शिता थी और इसी में उनकी सफलता भी।

मैं तो यही समझता हूँ कि यदि हमें अपने समाज और देश में उन सब अन्यायों और अत्याचारों की पुनरावृत्ति नहीं करनी है, जिनके द्वारा आज के सारे संघर्ष उत्पन्न होते हैं, तो हमें अपनी ऐतिहासिक नैतिक चेतना या संस्कृति के आधार पर ही अपनी आर्थिक व्यवस्था बनानी चाहिए अर्थात् उसके पीछे वैयक्तिक लाभ और भोग की भावना प्रधान न होकर वैयक्तिक त्याग और सामाजिक कल्याण की भावना ही प्रधान होनी चाहिए। हमारे प्रत्येक देशवासी को अपने सारे आर्थिक व्यापार उसी भावना से प्रेरित होकर करने चाहिए। वैयक्तिक स्वार्थों और स्वत्वों पर जोर न देकर वैयक्तिक कर्तव्य और सेवानिष्ठा पर जोर देना चाहिए। किसी भी क्रिया के पीछे जो भावना निहित होती है, उसका बड़ा प्रभाव हुआ करता है और परिणाम भी, यद्यपि देखने में क्रिया का रूप एक ही क्यों न हो। एक छोटे-से उदाहरण से यह बात स्पष्ट की जा सकती है। एक सम्मिलित परिवार है जिसका प्रत्येक व्यक्ति इस भावना से काम करता है सभी व्यक्तियों को अधिक-से-अधिक वह सुख पहुँचा सके, और इसीलिए वह पूरी शक्ति लगा कर जितना भी उपार्जन किया जा सकता है, करता है। सबका सामूहिक उपार्जन मान लीजिए कि एक रकम होती है जिससे अधिक उपार्जन करने की शक्ति परिवार में नहीं है। उसी परिवार का प्रत्येक व्यक्ति इस भावना से काम करता है कि उसको अपने सुख के लिए अधिक-से-अधिक उपार्जन करना चाहिए तो भी सब व्यक्तियों का सामूहिक उपार्जन उतना ही होगा जितना कि प्रथमोक्त

स्थिति में। इस तरह सामूहिक संपत्ति दोनों स्थितियों में बराबर होगी और उसका बराबर बँटवारा कर दिया जाए तो प्रत्येक को बराबर ही सुख होगा। पर इन दोनों स्थितियों में बहुत बड़ा अंतर यह पड़ जाएगा कि पहली स्थिति में संघर्ष का कोई भय नहीं क्योंकि कोई केवल अपने लिए कुछ नहीं कर रहा है और दूसरे में संघर्ष अनिवार्य है क्योंकि प्रत्येक अपने लिए ही कर रहा है। हम समझते हैं कि हमारी संस्कृति का तकाज़ा है कि पहली स्थिति में हम अपने को लाएँ और यदि संसार का संघर्ष, चाहे वह व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का हो, चाहे देश-देश के बीच का, वर्तमान रहेगा ही।

आज विज्ञान मनुष्यों के हाथों में अद्‌भुत और अतुल शक्ति दे रहा है। उसका उपयोग एक ओर व्यक्ति और समूह के उत्कर्ष में और दूसरी ओर व्यक्ति और समूह के गिराने में होता रहेगा। इसलिए हमें उस भावना को जाग्रत रखना है और उसे जाग्रत रखने के लिए कुछ ऐसे साधनों को भी हाथ में रखना होगा जो उस अहिंसात्मक त्याग भावना को प्रोत्साहित करें और भोग-भावना को दबाए रखें। नैतिक अंकुश के बिना शक्ति मानव के लिए हितकर नहीं होती। वह नैतिक अंकुश यह चेतना या भावना ही दे सकती है। वही उस शक्ति को परिमित भी कर सकती है और उसके उपयोग को नियंत्रित भी।

प्रश्न-अभ्यास

1. भारतीय संस्कृति की विभिन्नताओं और समानताओं का उल्लेख कीजिए।
2. आशय स्पष्ट कीजिए:
   (क) कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बदले बानी।
   (ख) यह एक देश नहीं, अनेक देशों का एक समूह है, यह एक जाति नहीं अनेक जातियों का समूह है।
   (ग) कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
   सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा।
   (घ) तेन त्यक्तेन भुंजीथा :
3. 'देश की विभिन्नताओं की तह में एक ऐसी समता और एकता फैली हुई है

जो अन्य विभिन्नताओं को एक सूत्र में पिरो लेती है।" इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।

4. हमारी संस्कृति का मूलाधार अहिंसा तत्त्व है, कैसे ?
5. हमारी संस्कृति विपरीत परिस्थितियों में भी किन विशेषताओं के कारण अक्षुण्ण बनी रही ?
6. विश्वशांति में बाधक तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।
7. विज्ञान की उपलब्धियों को मानव के लिए किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है ?
8. इस पाठ में स्वतंत्रता-संग्राम से संबंधित अनेक महापुरुषों का नामोल्लेख हुआ है। उनमें से किन्हीं तीन पर विशेष जानकारी प्राप्त कर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
9. 'आज की विषम स्थिति में भारतीय संस्कृति के आधार पर ही विश्व शांति संभव है।' इस विषय पर कक्षा में एक परिसंवाद आयोजित कीजिए।
10. महाद्वीप एक समस्त शब्द है जिसका प्रथम शब्द महान् है।महान् शब्द से बने अन्य पाँच समस्त शब्द लिखिए।

महादेवी वर्मा
(1907-87)

महादेवी वर्मा का जन्म फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। सन् 1932 ई. में प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. की उपाधि प्राप्त कर वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की आचार्या नियुक्त हुईं। बाद में उसकी कुलपति भी बनीं। विक्रम, कुमायूँ तथा दिल्ली विश्वविद्यालयों ने उन्हें डी. लिट् की मानद उपाधि से विभूषित किया। उनकी साहित्यिक, शैक्षिक तथा सामाजिक सेवाओं के लिए भारत सरकार ने उन्हें **पद्मभूषण** अलंकार से सम्मानित किया। उनकी काव्य-कृति **यामा** पर उन्हें सन् 1982 का भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने भी उन्हें **भारत भारती** नाम से स्थापित हिन्दी के सर्वोत्तम पुरस्कार से सम्मानित किया।

सशक्त गद्य लेखिका होने के साथ-साथ, महादेवी वर्मा एक कवयित्री भी थीं। छायावाद के चार स्तंभों में से वे एक थीं। उनके काव्य में करुणा की प्रधानता है और उन्हें पीड़ा की कवयित्री कहा जाता रहा है।

उनकी प्रमुख गद्य कृतियाँ हैं– स्मृति की रेखाएँ, अतीत के चलचित्र, मेरा परिवार, पथ के साथी, शृंखला की कड़ियाँ।

काव्य कृतियों में नीरजा, नीहार, रश्मि, सांध्य गीत, दीपशिखा एवं यामा उल्लेखनीय हैं। वे कुछ समय तक चाँद नामक पत्रिका की संपादिका भी रहीं।

महादेवी जी कुशल संस्मरणकार हैं। उनके संस्मरणों में रेखा-चित्र और निबंध-शैली भी घुल-मिल गई है, जिससे स्मरणीय पात्र के गुण-दोषों के उजागर होने के साथ-साथ उनका रूपाकार भी उभरकर

पाठकों के सामने आ जाता है तथा अनेक सामाजिक एवं साहित्यिक प्रश्न भी कुलबुलाने लगते हैं। इन संस्मरणों के घेरे में पशु-पक्षियों से लेकर समाज के साधारण उपेक्षित लोग, नौकर, पथ के साथी, साहित्यकार आदि सभी आ जाते हैं। उनके गद्य में दार्शनिक चिंतन की गहराई, कवित्व की संवेदनशीलता और चित्रकार के विविध रंग विद्यमान रहते हैं। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ अवश्य है किंतु उन्होंने उसे क्लिष्ट और कृत्रिम नहीं बनने दिया है। उनका आत्मीय संस्पर्श पाकर उनके पात्र बाहर-भीतर से एक साथ आलोकित हो उठते हैं और पाठक की स्मृति में एक छाप छोड़ जाते हैं।

गौरा महादेवी वर्मा द्वारा लिखा गया एक मर्मस्पर्शी संस्मरण है, जिसमें लेखिका ने गौरा गाय के लुभावने रूपाकार और मुग्ध करने वाले उसके स्वभाव का चित्रण किया है। बहुत शीघ्र ही गौरा अपने मृदुल स्वभाव के कारण लेखिका द्वारा पाले गए अन्य पशु पक्षियों से हिल-मिल जाती है। अंत में गौरा की मृत्यु के चित्रण में लेखिका ने अपने हृदय की सारी करुणा उड़ेल दी है। गौरा की मृत्यु सहज नहीं थी, उसे गुड़ में सुई मिलाकर खिला दी गई थी। लेखिका का दुःख व्यंग्य में फूट पड़ता है "आह मेरा गोपालक देश!"

7. गौरा

गौरा मेरी बहन के घर पली हुई गाय की वयःसंधि तक पहुँची हुई बछिया थी। उसे इतने स्नेह औऱ दुलार से पाला गया था कि वह अन्य गोवत्साओं से कुछ विशिष्ट हो गई थी।

बहन ने एक दिन कहा, तुम इतने पशु-पक्षी पाला करती हो– एक गाय क्यों नहीं पाल लेतीं, जिसका कुछ उपयोग हो। वास्तव में मेरी छोटी बहन श्यामा अपनी लौकिक बुद्धि में मुझसे बहुत बड़ी हैं और बचपन से उनकी कर्मनिष्ठा तथा व्यवहार-कुशलता की बहुत प्रशंसा होती रही है, विशेषतः मेरी तुलना में।

यदि वे आत्मविश्वास के साथ कुछ कहती हैं तो उनका विचार संक्रामक रोग के समान सुनने वाले को तत्काल प्रभावित करता है। आश्चर्य नहीं, यदि उस दिन उनके उपयोगितावाद संबंधी भाषण ने मुझे इतना अधिक प्रभावित किया कि तत्काल उस सुझाव का कार्यान्वयन आवश्यक हो गया।

वैसे खाद्य की किसी भी समस्या के समाधान के लिये पशु-पक्षी पालना मुझे कभी नहीं रुचा। बकरी, कुक्कुट, मछली आदि पालने के मूल उद्देश्य का ध्यान आते ही मेरा मन विद्रोह करने लगता है।

पर, उस दिन मैंने ध्यानपूर्वक गौरा को देखा। पुष्ट लचीले पैर, भरे पुट्ठे, चिकनी भरी हुई पीठ, लंबी सुडौल गर्दन, निकलते हुए छोटे-छोटे सींग, भीतर की लालिमा की झलक देते हुए कमल की दो अधखुली पंखुड़ियों जैसे कान, लंबी और अंतिम छोर पर काले सघन चामर का स्मरण दिलाने वाली पूँछ, सब कुछ साँचे में ढला हुआ सा था। गाय को मानो इटैलियन मार्बल में तराशकर उस पर ओप दी गई हो।

स्वस्थ पशु के रोमों की सफ़ेदी में एक विशेष चमक होती है। गौरा

की उज्ज्वलता देखकर ऐसा लगा, मानो उसके रोमों पर अभ्रक का चूर्ण मल दिया गया हो, जिसके कारण जिधर आलोक पड़ता था, उधर विशेष चमक उत्पन्न हो जाती थी।

गौरा को देखते ही गाय पालने के संबंध में मेरी दुविधा निश्चय में बदल गई।

गाय जब मेरे बँगले पर पहुँची, तब मेरे परिचितों और परिचारकों में श्रद्धा का ज्वार-सा उमड़ आया। उसे लाल सफेद गुलाबों की माला पहनाई गई, केशर-रोली का बड़ा-सा टीका लगाया गया, घी का चौमुख दीया जलाकर आरती उतारी गई और उसे दही-पेड़ा खिलाया गया। उसका नामकरण हुआ गौरांगिनी या गौरा। पता नहीं, इस पूजा-अर्चा का उस पर क्या प्रभाव पड़ा, परंतु वह बहुत प्रसन्न जान पड़ी। उसकी बड़ी चमकीली और काली आँखों में जब आरती के दीये की लौ प्रतिफलित होकर झिलमिलाने लगी, तब कई दीयों का भ्रम होने लगा। जान पड़ा, जैसे रात में काली दिखने वाली लहर पर किसी ने कई दीये प्रवाहित कर दिए हों।

गौरा वास्तव में बहुत प्रियदर्शन थी, विशेषतः उसकी काली बिल्लौरी आँखों का तरल सौंदर्य तो दृष्टि को बाँधकर स्थिर कर देता था। चौड़े उज्ज्वल माथे और लंबे साँचे में ढले हुए से मुख पर आँखें बर्फ में नीले जल के कुंडों के समान लगती थीं। उनमें एक अनोखा विश्वास का भाव रहता था। गाय के नेत्रों में हिरन के नेत्रों जैसा चकित विस्मय न होकर एक आत्मीय विश्वास ही रहता है। उस पशु को मनुष्य से यातना ही नहीं, निर्मम मृत्यु तक प्राप्त होती है परंतु उसकी आँखों के विश्वास का स्थान न विस्मय ले पाता है, न आतंक।

महात्मा गांधी ने "गाय करुणा की कविता है", क्यों कहा, यह उसकी आँखें देखकर ही समझ में आ सकता है।

गौरा की अलस मंथर गति से तुलना करने योग्य कम वस्तुएँ हैं। तीव्र गति में सौंदर्य है परंतु वह मंथर गति के सौंदर्य को नहीं पाता। बाण की तीव्र गति क्षण भर के लिए दृष्टि में चकाचौंध उत्पन्न कर सकती है, परंतु मंद समीर से फूल का अपने वृंत पर हौले-हौले हिलना दृष्टि का उत्सव है।

कुछ ही दिनों में वह सबसे इतनी हिल-मिल गई कि अन्य

पशु-पक्षी अपनी लघुता और उसकी विशालता का अंतर भूल गए। कुत्ते-बिल्ली उसके पेट के नीचे और पैरों के बीच में खेलने लगे। पक्षी उसकी पीठ और माथे पर बैठ कर उसके कान तथा आँखें खुजलाने लगे। वह भी स्थिर खड़ी रहकर और आँखें मूँदकर मानो उनके संपर्क-सुख की अनुभूति में खो जाती थी।

हम सबको वह आवाज़ से नहीं, पैर की आहट से भी पहचानने लगी। समय का इतना अधिक बोध उसे हो गया था कि मोटर के फाटक में प्रवेश करते ही वह बाँ-बाँ की ध्वनि से हमें पुकारने लगती। चाय, नाश्ता तथा भोजन के समय से भी वह इतनी परिचित थी कि थोड़ी देर कुछ पाने की प्रतीक्षा करने के उपरांत रँभा-रँभाकर घर सिर पर उठा लेती थी।

उसका साहचर्यजनित लगाव, मानवीय स्नेह के समान ही निकटता चाहता था। निकट जाने पर वह सहलाने के लिए गर्दन बढ़ा देती, हाथ फेरने पर अपना मुख आश्वस्त भाव से कंधे पर रखकर आँखें मूँद लेती। जब उससे दूर जाने लगते, तब गर्दन घुमा-घुमाकर देखती रहती। आवश्यकता के लिए उसके पास एक ही ध्वनि थी, परंतु उल्लास, दुख, उदासीनता, आकुलता आदि की अनेक छाया-छवियाँ उसकी बड़ी और काली आँखों में तैरा करती थीं।

एक वर्ष के उपरांत गौरा एक तुष्ट सुंदर वत्स की माता बनी। वत्स अपने लाल रंग के कारण गेरू का पुतला जैसा जान पड़ता था। उसके माथे पर पान के आकार का श्वेत तिलक और चारों पैरों में खुरों के ऊपर सफ़ेद वलय ऐसे लगते थे, मानो गेरू की बनी वत्समूर्ति को चाँदी के आभूषणों से अलंकृत कर दिया गया हो। बछड़े का नाम रखा गया लालमणि, परंतु उसे सब लालू के संबोधन से पुकारने लगे। माता पुत्र दोनों निकट रहने पर हिमराशि और जलते अंगारे का स्मरण कराते थे। अब हमारे घर में मानो दुग्ध महोत्सव आरंभ हुआ। गौरा प्रातः सायं बारह सेर के लगभग दूध देती थी, अतः लालमणि के लिए कई सेर छोड़ देने पर भी इतना अधिक शेष रहता था कि आस-पास के बाल गोपाल से लेकर कुत्ते-बिल्ली तक सब पर मानो "दूधो नहाओ" का आशीर्वाद फलित होने लगा। कुत्ते-बिल्लियों ने तो एक अद्भुत दृश्य उपस्थित कर दिया था। दुग्ध-दोहन के समय वे सब गौरा के सामने एक पंक्ति में बैठ

जाते और महादेव उनके आगे उनके खाने के लिए निश्चित बरतन रख देता। किसी विशेष आयोजन पर आमंत्रित अतिथियों के समान वे परम शिष्टता का परिचय देते हुए प्रतीक्षा करते रहते। फिर नाप-नापकर सबके पात्रों में दूध डाल दिया जाता, जिसे पीने के उपरांत वे एक बार फिर अपने-अपने स्वर में कृतज्ञता-ज्ञापन-सा करते हुए गौरा के चारों ओर उछलने-कूदने लगते। जब तक वे सब चले न जाते, गौरा प्रसन्न दृष्टि से उन्हें देखती रहती। जिस दिन उनके आने में विलंब होता, वह रँभा-रँभाकर मानो उन्हें पुकारने लगती।

पर अब दुग्ध दोहन की समस्या कोई स्थायी समाधान चाहती थी। नौकरों में नागरिक तो दुहना जानते ही नहीं थे और जो गाँव से आए थे, वे अभ्यास के कारण यह कार्य इतना भूल चुके थे कि घंटों लगा देते थे। गौरा के आने से पूर्व जो ग्वाला हमारे यहाँ दूध देता था, जब उसने इस कार्य के लिए अपनी नियुक्ति के विषय में आग्रह किया, तब हमने अपनी समस्या का समाधान पा लिया।

दो-तीन मास के उपरांत गौरा ने दाना चारा खाना बहुत कम कर दिया और वह उत्तरोत्तर दुर्बल और शिथिल रहने लगी। चिंतित होकर मैंने पशु चिकित्सकों को बुलाकर दिखाया। वे कई दिनों तक अनेक प्रकार के निरीक्षण-परीक्षण एक्सरे आदि द्वारा रोग का निदान खोजते रहे। अंत में उन्होंने निर्णय दिया कि गाय को सुई खिला दी गई है, जो उसके रक्त संचार के साथ हृदय तक पहुँच गई है। जब सुई गाय के हृदय के पार हो जाएगी, तब रक्त-संचार रुकने से उसकी मृत्यु निश्चित है।

मुझे कष्ट और आश्चर्य दोनों की अनुभूति हुई। सुई खिलाने का क्या तात्पर्य हो सकता है? दाना चारा तो हम स्वयं देखभाल कर देते हैं, परंतु संभव है उसी में सुई चली गई हो। पर डाक्टर के उत्तर से ज्ञात हुआ कि दाने-चारे के साथ गई सुई गाय के मुख में ही छिदकर रह जाती है। गुड़ की बड़ी डली के भीतर रखी सुई ही गले के नीचे उतर जाती है और अंततः रक्त संचार में मिलकर हृदय में पहुँच सकती है!

अंत में एक ऐसा निर्मम सत्य उद्घाटित हुआ, जिसकी कल्पना भी मेरे लिए संभव नहीं थी। प्रायः कुछ ग्वाले ऐसे घरों में जहाँ उनसे अधिक दूध लिया जाता है, गाय का आना सह नहीं पाते। अवसर मिलते

ही वे गुड़ में सुई लपेटकर उसे खिलाकर उसकी असमय मृत्यु निश्चित कर देते हैं। गाय के मर जाने पर उन घरों में वे पुनः दूध देने लगते हैं। सुई की बात ज्ञात होते ही ग्वाला एक प्रकार से अंतर्धान हो गया, अतः संदेह का विश्वास में बदल जाना स्वाभाविक था। वैसे उसकी उपस्थिति में भी किसी कानूनी कार्यवाही के लिए आवश्यक प्रमाण जुटाना असंभव था।

तब गौरा का मृत्यु से संघर्ष आरंभ हुआ, जिसकी स्मृति मात्र से आज भी मन सिहर उठता है। डाक्टरों ने कहा, गाय को सेब का रस पिलाया जाए, तो सुई पर कैल्शियम जम जाने और उसके न चुभने की संभावना है। अतः नित्य कई-कई सेर सेब का रस निकाला जाता और नली से गौरा को पिलाया जाता। शक्ति के लिये इंजेक्शन पर इंजेक्शन दिए जाते। पशुओं के इंजेक्शन के लिए सूजे के समान बहुत लंबी -मोटी सिंरिज तथा बड़ी बोतल भर दवा की आवश्यकता होती है। अतः वह इंजेक्शन भी अपने आप में "शल्य क्रिया" जैसा यातनामय हो जाता था। पर गौरा अत्यंत शांति से बाहर और भीतर दोनों ओर की चुभन और पीड़ा सहती थी। केवल कभी-कभी उसकी सुंदर, पर उदास आँखों के कोनों में पानी की दो बूँदें झलकने लगती थीं।

अब वह उठ नहीं पाती थी, परंतु मेरे पास पहुँचते ही उसकी आँखों में प्रसन्नता की छाया-सी तैरने लगती थी। पास जाकर बैठने पर वह मेरे कंधे पर अपना मुख रख देती थी और अपनी खुरदरी जीभ से मेरी गर्दन चाटने लगती थी।

लालमणि बेचारे को तो माँ की व्याधि और आसन्न मृत्यु का बोध नहीं था। उसे दूसरी गाय का दूध पिलाया जाता था, जो उसे रुचता नहीं था। वह तो अपनी माँ का दूध पीना और उससे खेलना चाहता था, अतः अवसर मिलते ही वह गौरा के पास पहुँचकर या अपना सिर मार मार उसे उठाना चाहता था या खेलने के लिए उसके चारों ओर उछल-कूदकर परिक्रमा-सा देता रहता।

मैंने बहुत से जीव-जंतु पाल रखे हैं, अतः उनमें से कुछ को समय-असमय विदा देनी ही पड़ती है, परंतु ऐसी मर्मव्यथा का मुझे स्मरण नहीं है।

इतनी हृष्ट-पुष्ट, सुंदर, दूध-सी उज्ज्वल पयस्विनी गाय अपने

इतने सुंदर चंचल वत्स को छोड़कर किसी भी क्षण निर्जीव और निश्चेष्ट हो जाएगी, यह सोचकर ही आँसू आ जाते थे।

लखनऊ, कानपुर आदि नगरों से भी पशु-विशेषज्ञों को बुलाया, स्थानीय पशु-चिकित्सक तो दिन में दो-तीन बार आते रहे, परंतु किसी ने ऐसा उपचार नहीं बताया, जिससे आशा की कोई किरण मिलती। निरुपाय मृत्यु की प्रतीक्षा का मर्म वही जानता है, जिसे किसी असाध्य और मरणासन्न रोगी के पास बैठना पड़ता हो।

जब गौरा की सुंदर चमकीली आँखें निष्प्रभ हो चलीं और सेब का रस भी कंठ में रुकने लगा, तब मैंने अंत का अनुमान लगा लिया। अब मेरी एक ही इच्छा थी कि मैं उसके अंत समय उपस्थित रह सकूँ। दिन में ही नहीं, रात में भी कई-कई बार उठकर मैं उसे देखने जाती रही।

अंत में एक दिन ब्राह्ममुहूर्त में चार बजे जब मैं गौरा को देखने गई, तब जैसे ही उसने अपना मुख सदा के समान मेरे कंधे पर रखा, वैसे ही वह एक दम पत्थर जैसा भारी हो गया और मेरी बाँह पर से सरककर धरती पर आ रहा। कदाचित् सुई ने हृदय को वेधकर बंद कर दिया।

गौरांगिनी को ले जाते समय मानो करुणा का समुद्र उमड़ आया, परंतु लालमणि इसे भी खेल समझ उछलता-कूदता रहा। यदि दीर्घ निःश्वास का शब्दों में अनुवाद हो सके, तो उसकी प्रतिध्वनि कहेगी "आह मेरा गोपालक देश !"

प्रश्न-अभ्यास

1. गौरा को पालने में महादेवी जी के मन में दुविधा क्यों थी, वह निश्चय में किस प्रकार बदल गई ?
2. "गाय करुणा की कविता" महात्मा गांधी ने ऐसा क्यों कहा है ?
3. महादेवी जी के प्रति गौरा के साहचर्यजनित लगाव के कुछ उदाहरण दीजिए।
4. गौरा के रूप-सौंदर्य तथा भाव-मुद्रा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
5. "दूधो नहाओ" का आशीर्वाद फलित होने लगा। कैसे ? स्पष्ट कीजिए।
6. दुग्ध-दोहन की समस्या का समाधान के साथ कौन-सी समस्या उत्पन्न हो गई

और उसने क्या गुल खिलाए ?

7. गौरा की क्रमिक मृत्यु की मर्मांतक स्थिति का वर्णन कीजिए।
8. "आह मेरा गोपालक देश!" में कौन सी ग्लानि और वेदना उभर कर सामने आई हैं?
9. महादेवी ने अनेक पशु-पक्षियों को पाला था और उनमें से कुछ के संस्मरण लिखे हैं, पुस्तकालय से लेकर उन्हें पढ़िए।
10. किसी पालतू पशु या पक्षी के संबंध में अपने अनुभव लिखिए।
11. अपने मित्र को पत्र लिखकर गौरा की दर्दनाक मृत्यु पर अपनी भावनाएँ व्यक्त कीजिए।
12. "पुष्ट लचीले पैर, ऊँचे-भरे पुट्ठे, चिकनी भरी हुई पीठ, लंबी सुडौल गर्दन, निकलते हुए छोटे-छोटे सींग, भीतर की लालिमा की झलक देते हुए कमल की दो अधखुली पंखुड़ियों जैसे कान, लंबी और अंतिम छोर पर काले सघन चामर का स्मरण दिलाने वाली पूँछ, सब कुछ साँचे में ढला हुआ था" इस अनुच्छेद को ध्यानपूर्वक पढ़िए और इसमें आए हुए संज्ञा पदबंधों और विशेषणों को छाँटिए।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
(1927-84)

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जन्म बस्ती (उ.प्र.) में हुआ। उन्होंने ऐंग्लो संस्कृत उच्च विद्यालय, बस्ती से हाई स्कूल परीक्षा पास करके क्वींस कॉलेज, वाराणसी में अध्ययन किया तथा प्रयाग विश्वविद्यालय से एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। प्रयाग में वे **परिमल** संस्था के सदस्य और मंत्री रहे। आपने आडीटर जनरल इलाहाबाद के कार्यालय से अपने कर्ममय जीवन की शुरुआत की। कुछ दिन तक आकाशवाणी में सहायक प्रोड्यूसर रहे। उन्होंने साप्ताहिक पत्रिका **दिनमान** के प्रमुख उप-संपादक के पद पर भी कार्य किया। उन्होंने जीवन के अंतिम वर्षों में बच्चों की मासिक पत्रिका **पराग** का संपादन कार्य सँभाला।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, लेख एवं निबंध सभी पर लेखनी चलाई और बच्चों से लेकर प्रबुद्ध वयस्कों तक के लिए साहित्य-रचना की। उनकी गद्य रचनाओं में **चरचे और चरखे** (लेख संग्रह), **पागल कुत्तों का मसीहा, सोया हुआ जल** (उपन्यास), **लड़ाई** (कहानी संग्रह), **बकरी, कल फिर भात आएगा, लड़ाई, अब गरीबी हटाओ, राजा बाज बहादुर और रानी रूपमती** (नाटक), **लाख की नाक, भौं भौं, खों खों, बतूता का जूता** (बाल साहित्य) उल्लेखनीय हैं।

काव्य कृतियों में **काठ की घंटियाँ, बाँस का पुल, एक सूनी नाव, गर्म हवाएँ, कुआनो नदी, जंगल का दर्द** तथा **खूटियों पर टँगे लोग** प्रमुख हैं। वे **तीसरा सप्तक** के भी कवि रहे हैं। 'खूँटियों पर टँगे लोग' पर उनको साहित्य अकादमी ने पुरस्कृत किया है।

उन्होंने अपने परिवेश को खुली आँखों से देखा है और उसके

प्रबुद्ध - Enlightened, awakened

यथार्थ को कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त किया है। उनकी साहित्यिक कृतियों में बड़ी सहजता और स्वाभाविकता पाई जाती है। उनकी चेतना सदैव लोक से रस ग्रहण करती रही है। सामाजिक शोषण एवं विसंगतियों पर उन्होंने करारी चोट की है। साधारण और सामान्य भाषा को उन्होंने असाधारण और असामान्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने में सफलता प्राप्त की है। उनकी रचनाओं में भारतीय गाँवों और यहाँ की मिट्टी की गंध बसी है। नवलेखन से जुड़े साहित्यकारों में सर्वेश्वर संभवतः सर्वाधिक संप्रेष्य हैं। नई कविता के रचनाकारों में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कलेण्डर कलाकार सर्वेश्वर का एक विचारात्मक लेख है, जिसमें लेखक ने कलेंडर कलाकार और पत्र के स्तंभकार के बीच संवादमयता की स्थिति पैदाकर कलेंडर कलाकार के निरंतर निर्जीव और व्यवसायोन्मुख होते जाने की विवशता का चित्रण किया है और बताया है कि अब राजनेताओं के चित्र वाले कलेण्डर नहीं बनते, क्योंकि वे राष्ट्रीय नेता न रहकर पार्टी नेता रह गए हैं। महान् पुरुषों और देवी देवताओं का स्थान अब फिल्मी हीरो और खिलाड़ियों ने ले लिया है। लेख में वर्तमान समाज के नैतिक पतन का बड़ा ही यथार्थपूर्ण एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है।

8. कलेण्डर कलाकार

उस दिन शर्मा जी के पास उनके एक मित्र बैठे हुए थे – ढलती उम्र, पर स्वस्थ शरीर। वह कलेण्डर बनाते हैं। और कभी-कभी अच्छा कमा भी लेते हैं। उन्हें देखकर इस स्तंभकार को अपने बचपन की याद आती है जब घर में नया कलेण्डर आने का अर्थ एक नई स्फूर्ति से भर जाना होता था। हर कमरे में एकाध कलेण्डर जरूर होता था। कभी-कभी तो दीवार भरी होती थी। कलेण्डर का लाना और लगाना मध्यवर्गीय शौक था। यह जरूरी नहीं था कि कलेण्डर तारीख वाले हों। अधिकतर तारीख वाले नहीं होते थे। ये कलेण्डर दीवाली के मौके पर आते थे और सजावट का साधन बनते थे। अब इनका चलन खत्म होता जा रहा है। तारीख वाले व्यवसायी कलेण्डर ही अब दिखते हैं, वे भी घर की दीवारों पर एकाध ही। उन दिनों राजनीतिक नेताओं के कलेण्डर, देवी-देवताओं के कलेण्डर, धार्मिक पुरुषों के कलेण्डर की बाढ़ रहती थी।

"अब राजनीतिक नेताओं के कलेण्डर देखने को नहीं मिलते । क्या उनका बनना बंद हो गया है ?"

"हाँ, अब नहीं चलते " कलेण्डर कलाकार ने उत्तर दिया।

इस स्तंभकार को वे दिन याद आए – आजादी के पहले स्वाधीनता संग्राम के दिन, जबकि देश के नेताओं के कलेण्डर बाजारों और घरों में भरे होते थे, गांधी, तिलक, नेहरू पटेल, सुभाष, राजेंद्र बाबू, मौलाना आजाद से लेकर भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद आदि शायद ही कोई नेता ऐसा हो जिसका कलेण्डर बाजार में न मिलता हो। सच तो यह है कि सारे समाज में देशभक्ति की लहर जगाने में इन राष्ट्रीय नेताओं के कलेण्डरों का बड़ा हाथ था, जो घर-घर में पहुँचे हुए थे। हम बच्चे घर की दीवारों पर उन्हें टँगे देख उनके बारे में पूछते थे और इस तरह

स्वाधीनता संग्राम के इतिहास से खुद को जुड़ा महसूस करते थे और देश की आजादी के लिए बड़े होकर लड़ने के स्वप्न देखा करते थे।

"अब नेताओं के कलेण्डर क्यों नहीं चलते ?" स्तंभकार ने पूछा।

इसके पहले कि कलेण्डर कलाकार कुछ कहें, शर्मा जी बोल उठे-

"है कोई नेता ऐसा जिसका कलेण्डर आप लगा सकते हों ? अब किसी नेता का कलेण्डर लगाने, बनाने या बेचने का मतलब उस पार्टी का होना है और पार्टी के होने का मतलब उस पार्टी की गंदगी को ढोना है। एक भी नेता ऐसा आज नहीं है जो देश का नेता हो। सब पार्टी के नेता हैं। आज़ादी-पूर्व के राष्ट्रीय नेताओं जैसा व्यक्तित्व आज किसी का नहीं है। आज हर नेता की कहानी त्याग, तपस्या और बलिदान की कहानी नहीं है, छल, फरेब और जोड़-तोड़ की कहानी है। उनके बारे में आप अपने बच्चों को क्या बता सकते हैं और क्या बनने को उकसा सकते हैं।"

इस स्तंभकार को बचपन का देखा एक कलेण्डर याद आया जिसमें गांधी और कृष्ण का साथ-साथ चित्र था और उनके चित्रों के नीचे कविता में विरुदावली लिखकर दोनों में साम्य दिखाया गया था, जैसे, "वह माखन चोर कहाते थे, ये नमक चोर कहलाते हैं।"

"क्या इसीलिए नेताओं के कलेण्डर नहीं बनते?" स्तंभकार ने कलेण्डर कलाकार से पूछा।

"मालूम नहीं, पर अब उनकी माँग नहीं है। हमने भी नेताओं के बहुत कलेण्डर बनाए थे। पर अब कोई बनाने को कहता नहीं। कोई पार्टी कहती है तो उसके हिसाब से बना देते हैं। वैसे बाजार में नेता लोग अब नहीं चलते।"

"देवी-देवता?"

"वह भी अब नहीं चलते।"

स्तंभकार को लक्ष्मी-गणेश, शिव-पार्वती, सीता-राम, राधा-कृष्ण, दुर्गा आदि के तमाम कलेण्डर याद आने लगे जो उसने बचपन में देखे थे, जो हर घर में कम-से-कम पूजा की कोठरी में जरूर होते थे।

"वह क्यों नहीं चलते, धर्म तो समाज से अभी गया नहीं?"

शर्मा जी बोले, "गया नहीं, पर उसका सूरज ढल रहा है। अब धर्म

में उतनी रोशनी नहीं। धर्म परायण मध्यवर्ग का दिल अब धर्म के नाम से दमकता नहीं, बुझा-बुझा रहता है।''

''इसका क्या कारण है ?''

''आदमी अब धर्म और कर्मकांड से भीतर से उदासीन हो रहा है। यद्यपि अनेक कारणों से यह ऊपरी खानापूरी किए रहता है। दीवाली पर गणेश-लक्ष्मी शायद इसीलिए कुछ घरों में आ जाते हैं, पर उस पुरानी आस्था के कारण नहीं।''

''महापुरुषों और संतों के कलेण्डर का क्या हाल है ?'' स्तंभकार ने कलेण्डर कलाकार से पूछा।

''वह तो और भी नहीं चलते।'' जवाब मिला।

स्तंभकार को विवेकानंद, रामतीर्थ, राणा प्रताप, शिवाजी, दयानंद आदि तमाम लोगों की याद आई जो घरों की दीवारों पर ज़रूर टँगे होते थे, जहाँ अब क्रिकेट के खिलाड़ी और फिल्मी चेहरे चिपके होते हैं।

''महापुरुष तो अब खिलाड़ी और फिल्मी हीरो बन गए हैं जब तक उनका बाजार रहता है घर की दीवारों पर यह चिपके रहते हैं। फिर उनपर उन्हीं के क्षेत्र के दूसरे चेहरे चिपक जाते हैं।'' शर्मा जी ने कहा।

''फिर तो फिल्मी चेहरों और खिलाड़ियों के कलेण्डर बनते होंगे?'' स्तंभकार ने कलेण्डर कलाकार से पूछा।

''नहीं, वह भी नहीं बनते। वह रंगीन पत्रिकाओं के माध्यम से घर-घर पहुँचते हैं और काटकर दीवारों पर चिपका लिए जाते हैं।'' कलाकार ने जवाब दिया।

''प्रकृति और जीव-जंतुओं के ?''

''वह तो और भी नहीं।''

''फिर किस तरह के कलेण्डर बनते हैं ?''

''अश्लील चित्रों के।''

''मतलब ?''

''नारी के अश्लील चित्र। वही बनते हैं, वही बिकते हैं। लक्ष्मी और सरस्वती तक को भी उसी रूप में चित्रित किया जाता है।''

स्तंभकार सोचने लगा, कितना पतन हो गया है हमारे समाज का

कि राजनीतिक नेता, संत, महापुरुष, पौराणिक चरित्र, प्रकृति, देवी-देवता सब दीवारों पर से उतर गए और शृंगारिकता तथा नग्नता -प्रदर्शन प्रधान तस्वीर उनपर चढ़ गई। त्याग, तपस्या, प्रेम, करुणा, बलिदान, देशभक्ति सब पर वासना चढ़ बैठी और वही हर समय आँखों के सामने लटकी है। क्या यह समाज इतना कमज़ोर हो गया है।

"फिर आप क्या बनाते हैं अब ?" कलेण्डर कलाकार से स्तंभकार ने पूछा। वह काफी देर चुप रहा। फिर बोला -

"छिटपुट कोई पार्टी जो कह देती है वह बना देता हूँ। इस क्षेत्र में भी काफी प्रतियोगिता हो गई है। सौ से लेकर दो हजार रुपए तक में कलैण्डर बनाने वाले मिल जाएँगे। मैं सेठों साहूकारों के यहाँ उनके घरों और मंदिरों में दीवारों पर काम करने लगा हूँ। उसी पर उनकी मर्जी से कुछ बना देता हूँ।"

"यानी अब कुछ दीवार पर फड़फड़ाता नहीं, उससे चिपका रहता है और पपड़ी के साथ गिर जाता है।" शर्मा जी ने कहा।

स्तंभकार को लगा कि सचमुच समाज की यही हालत हो गई है। यह कलेण्डर कलाकार भी फड़फड़ाना भूल गया है। सिमटते- सिमटते अपने व्यवसाय में यहाँ आकर चिपक गया है, जहाँ नैतिक रूप से गिरने के सिवा कोई चारा नहीं है।

प्रश्न-अभ्यास

1. कलेण्डरों के रूप-निर्माण में कालांतर में किस प्रकार के परिवर्तन होते गए हैं? इन परिवर्तनों से किस प्रकार की रुचि और सामाजिक दशा का पता चलता है ?
2. गांधी जी को नमक चोर क्यों कहा गया है ?
3. धार्मिक पुरुषों और राजनीतिक नेताओं के कलेण्डर अब किन कारणों से घरों में दिखलाई नहीं देते ?
4. स्वाधीनता से पूर्व राष्ट्रीय जागरण और सामाजिक चेतना में कलेण्डरों का क्या योगदान रहा है ?

5. व्याख्या कीजिए :
   (क) "यानी अब कुछ दीवार पर फड़फड़ाता नहीं, उससे चिपका रहता है और पपड़ी के साथ गिर जाता है।"
   (ख) त्याग, तपस्या, करुणा, बलिदान, देशभक्ति सब पर वासना चढ़ बैठी है और वही हर समय आँखों के सामने लटकी हैं।
   (ग) धर्म परायण मध्यवर्ग का दिल अब धर्म के नाम से दमकता नहीं, बुझा-बुझा रहता है।
6. राजनीतिक नेता, देवी-देवता, धार्मिक एवं सामाजिक सुधारक, खिलाड़ी, फिल्मी हीरो, प्रकृति और जीव-जंतु में से आप किन-किन के कलेण्डर बनाने का सुझाव देंगे, और क्यों?
7. स्तंभकार और कलेण्डरकार की बातचीत को संक्षिप्त, सरल एवं रोचक संवादों में लिखिए।
8. इस पाठ के आधार पर "सिमटते-सिमटते" द्विरुक्त शब्द के समान तीन शब्द और बताइए।
9. "पुराण" में "इक" प्रत्यय लगाने पर "पौराणिक" बनता है। इसी प्रकार निम्नलिखित शब्दों में "इक" प्रत्यय लगाकर नए शब्द बनाइए : इतिहास, व्यवसाय, राजनीति, धर्म, समाज, चरित्र, करुणा, नीति।

कृष्णा सोबती
(1925)

कृष्णा सोबती का जन्म गुजरात (पाकिस्तान) में हुआ। उनकी शिक्षा दिल्ली, शिमला एवं लाहौर में हुई। संप्रति स्वतंत्र लेखन।

कृष्णा सोबती ने अनेक कहानी, उपन्यास एवं रेखाचित्रों का सृजन किया है। लेखन के प्रति पूर्ण निष्ठा, आत्मीयता और भाव-प्रवणता के साथ-साथ कलात्मक सौष्ठव उनकी विशेषता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में नारी की मनःस्थितियों एवं इच्छाओं का साहस एवं सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया है। उन्होंने समकालीन परिस्थितियों में नारी-जीवन की विवशता, असहायता के यथार्थ को समझकर उसे संवेदनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की।

उनकी भाषा-शैली प्रवाहपूर्ण एवं यथार्थपरक है। थोड़े शब्दों से मर्म को उद्‌घाटित करने की क्षमता उनके लेखन का एक विशिष्ट गुण है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं— **बादलों के घेरे** , **यारों के यार : तिन पहाड़**, डार से बिछुड़ी, मित्रो मरजानी, सूरजमुखी अंधेरे के, जिंदगी नामा; जिंदारस, हम हशमत और सोबती एक सोहबत, ऐ लड़की, दानिश आदि।

प्रस्तुत पाठ **सिक्का बदल गया** में हम देखते हैं कि भारत के विभाजन के कारण किस प्रकार पीढ़ियों से एक-दूसरे के सुख-दुःख के साथी हिन्दू-मुसलमानों के दिल में परस्पर नफरत, अविश्वास और हिंसा उमड़ पड़ी और इस सारे दृश्य को देखती हुई शाहनी अपनी सारी धन -दौलत त्याग, अपनी टीस और विवशता को मन में छिपाए, अपने पुरखों की धरती को छोड़कर अनजान स्थल के लिए चल पड़ती है।

9. सिक्का बदल गया

खद्दर की चादर ओढ़े, हाथ में माला लिए शाहनी जब दरिया के किनारे पहुँची तो पौ फट रही थी। दूर-दूर आसमान के परदे पर लालिमा फैलती जा रही थी। शाहनी ने कपड़े उतारकर एक ओर रखे और "श्री राम", "श्री राम" करती पानी में हो ली। अंजलि भरकर सूर्य देवता को नमस्कार किया, अपनी उनींदी आँखों पर छींटे दिए और पानी से लिपट गई।

चनाब का पानी आज भी पहले-सा ही सर्द था, लहरें लहरों को चूम रहीं थीं। दूर सामने कश्मीर की पहाड़ियों से बर्फ़ पिघल रही थी, उछल-उछल आते पानी के भँवरों से टकराकर कगार गिर रहे थे, लेकिन दूर-दूर तक बिछी रेत आज न जाने क्यों खामोश लगती थी। शाहनी ने कपड़े पहने, इधर-उधर देखा, कहीं किसी की परछाईं तक न थी। पर नीचे रेत में अगणित पाँवों के निशान थे। वह कुछ सहम -सी उठी!

आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में न जाने क्यों कुछ भयावना-सा लग रहा है। वह पिछले पचास वर्षों से यहाँ नहाती आ रही है। कितना लंबा अरसा है। शाहनी सोचती है, एक दिन इसी दरिया के किनारे वह दुलहिन बनकर उतरी थी। और आज .... । आज शाह जी नहीं, उसका वह पढ़ा-लिखा लड़का नहीं, आज वह अकेली है, शाहजी की लंबी-चौड़ी हवेली में अकेली है। पर नहीं — यह क्या सोच रही है वह सवेरे-सवेरे! अब भी दुनियादारी से मन नहीं फिरा उसका। शाहनी ने लंबी साँस ली और "श्री राम , श्री राम" करती बाजरे के खेतों से होती घर की राह ली। कहीं-कहीं लिपे-पुते आँगनों पर से धुआँ उठ रहा था। टन-टन बैलों की घंटियाँ बज उठती हैं। फिर भी ... फिर भी कुछ

बँधा-बँधा-सा लग रहा है। शाहनी ने नजर उठाई। यह मीलों फैले खेत अपने ही हैं। भरी-भराई नई फसल को देखकर शाहनी किसी अपनत्व के मोह में भीग गई। यह सब शाहनी की बरकतें हैं। दूर-दूर गाँवों तक फैली हुई जमीनें, जमीनों में कुएँ – सब अपने हैं। साल में तीन फसल जमीन तो सोना उगलती है। शाहनी कुएँ की ओर बढ़ी आवाज दी, ''शेरे, शेरे हसैना हसैना ...''

शेरा शाहनी का स्वर पहचानता है। वह न पहचानेगा ! अपनी माँ जैना के मरने के बाद वह शाहनी के पास ही पलकर बड़ा हुआ। उसने पास पड़ा गँड़ासा, ''शटाले'' के ढेर के नीचे सरका दिया। हाथ में हुक्का पकड़ कर बोला ''ऐहे-सैना-सैना ...।'' शाहनी की आवाज उसे कैसे हिला गई। अभी तो वह सोच रहा था कि उस शाहनी की ऊँची हवेली की अँधेरी कोठरी में पड़ी सोने-चाँदी की संदूकचियाँ उठा कर ... कि तभी ''शेरे-शेरे ...।'' शेरा गुस्से से भर गया। किस पर निकाले अपना क्रोध ? शाहनी पर। चीख कर बोला - ''ऐ मर गई ऐ-रब्ब तैनू मौत दे ....''

हसैना आटेवाली कनाली एक ओर रख, जल्दी-जल्दी बाहर निकल आई। ''ऐ आई आँ - क्यों छाबेले (सुबह-सुबह) तड़पना हैं?''

अब तक शाहनी नजदीक पहुँच चुकी थी। शेरे की तेजी सुन चुकी थी। प्यार से बोली, ''हसैना, यह वक्त लड़ने का है ? वह पागल है तो तू ही जिगरा कर लिया कर।''

''जिगरा !'' हसैना ने मान भरे स्वर में कहा -''शाहनी, लड़का आखिर लड़का ही है, कभी शेरे से भी पूछा है कि मुँह अँधेरे क्यों गालियाँ बरसाईं हैं इसने ?'' शाहनी ने लाड़ से हसैना की पीठ पर हाथ फेरा, हँसकर बोली, ''पगली, मुझे तो लड़के से बहू अधिक प्यारी है ! शेरे-''

''हाँ शाहनी!''

''मालूम होता है, रात को कुल्लूबाल के लोग आए हैं यहाँ ?'' शाहनी ने गंभीर स्वर में कहा।

शेरे ने जरा रुककर, घबराकर कहा, ''नहीं शाहनी।'' शेरे के उत्तर को अनसुनी कर शाहनी जरा चिंतित स्वर से बोली, ''जो कुछ भी हो रहा है अच्छा नहीं। शेरे, आज शाह जी होते तो शायद कुछ बीच

बचाव करते। पर...। शाहनी कहते-कहते रुक गई। आज क्या हो रहा है। शाहनी को लगा जैसे जी भर-भर आ रहा है शाह जी को बिछुड़े कई साल बीत गए, पर आज कुछ पिघल रहा है। शायद पिछली स्मृतियाँ . . . , आँसुओं को रोकने के प्रयत्न में उसने हसैना की ओर देखा और हलके से हँस पड़ी। और शेरा सोच ही रहा है, क्या कह रही है शाहनी आज! शाह जी क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता। यह होके रहेगा - क्यों न हो? हमारे ही भाई-बंदो से सूद ले-लेकर शाह जी सोने की बोरियाँ तोला करते थे। प्रतिहिंसा की आग शेरे की आँखों में उतर आई। गँड़ासे की याद हो आई। शाहनी की ओर देखा नहीं - नहीं, शेरा इन पिछले दिनों में तीस चालीस कत्ल कर चुका है, पर-पर वह ऐसा नीच नहीं ... सामने बैठी शाहनी नहीं, शाहनी के हाथ उसकी आँखों में तैर गए। वह सर्दियों की रातें – कभी-कभी शाह जी की डाँट खाके वह हवेली में पड़ा रहता था। और फिर लालटेन की रोशनी में वह देखता है, शाहनी के ममता भरे हाथ दूध का कटोरा थाम हुए -- 'शेरे-शेरे उठ, पी ले '' शेरे ने शाहनी के झुर्रियाँ पड़े मुँह की ओर देखा तो शाहनी धीरे से मुसकरा रही थी। शेरा विचलित हो गया। आखिर शाहनी ने क्या बिगाड़ा है हमारा ? शाहजी की बात शाहजी के साथ गई, वह शाहनी को जरूर बचाएगा । लेकिन कल रात वाला मशवरा। वह कैसे मान गया था फिरोज की बात ! ''सब कुछ ठीक हो जाएगा, सामान बाँट लिया जाएगा।''

''शाहनी चलो तुम्हें घर तक छोड़ आऊँ''

शाहनी उठ खड़ी हुई। किसी गहरी सोच में चलती हुई शाहनी के पीछे-पीछे मजबूत कदम उठाता शेरा चल रहा है। शंकित-सा इधर-उधर देखता जा रहा है। अपने साथियों की बातें उसके कानों में गूँज रही हैं। पर क्या होगा शाहनी को मार कर ?

''शाहनी !''

''हाँ शेरे।''

शेरा चाहता है कि सिर पर आने वाले खतरे की बात कुछ तो शाहनी को बता दे, मगर वह कैसे कहे ?

''शाहनी ...''

शाहनी ने सिर ऊँचा किया। आसमान धूएँ से भर गया था।

शेरे..."
शेरा जानता है यह आग है। जबलपुर में आज लगनी थी लग गई।

शाहनी कुछ न कह सकी। उसके नाते-रिश्ते सब वहीं हैं।

हवेली आ गई। शाहनी ने शून्य मन से ड्योढ़ी में कदम रखा। शेरा कब लौट गया, उसे कुछ पता नहीं। दुर्बल सी देह और अकेली, बिना किसी सहारे के ! न जाने कब तक वहीं पड़ी रही शाहनी। दुपहर आई और चली गई। हवेली खुली पड़ी है। आज शाहनी नहीं उठ पा रही। जैसे उसका अधिकार आज स्वयं ही उससे छूट रहा है ! शाहजी के घर की मालकिन ... लेकिन नहीं, आज मोह नहीं हट रहा। मानो पत्थर हो गई हो। पड़े-पड़े शाम हो गई, पर उठने की बात फिर भी नहीं सोच पा रही। अचानक रसूली की आवाज सुनकर चौंक उठी।

"शाहनी-शाहनी, सुनो ट्रकें आती हैं लेने ?"

"ट्रकें ...?" शाहनी इसके सिवाय और कुछ न कह सकी। हाथों ने एक-दूसरे को थाम लिया। बात की बात में खबर गाँव भर में फैल गई। बीबी ने अपने विकृत कंठ से कहा, "शाहनी, आज तक कभी ऐसा न हुआ, न कभी सुना। गजब हो गया, अँधेर पड़ गया।"

शाहनी मूर्तिवत् वहीं खड़ी रही। नवाब बीबी ने स्नेह सनी उदासी से कहा, "शाहनी, हमने कभी न सोचा था !"

शाहनी क्या कहे कि उसी ने ऐसा कब सोचा था ? नीचे से पटवारी बेगू और जैलदार की बातचीत सुनाई दी। शाहनी समझी कि वक्त आ पहुँचा। मशीन की तरह नीचे उतरी, पर ड्योढ़ी न लाँघ सकी। किसी गहरी, बहुत गहरी आवाज से पूछा - कौन-कौन है वहाँ ?

कौन नहीं है आज वहाँ ? सारा गाँव है, जो उसके इशारे पर नाचता था कभी। उसकी असामियाँ है जिन्हें उसने अपने नाते-रिश्तों से कभी कम नहीं समझा, लेकिन नहीं, आज उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है? यह भीड़ की भीड़ उनमें कुल्लूवाल के जाट। वह क्या सुबह ही न समझ गई थी ?

बेगू पटवारी और मसीत के मुल्ला इस्माइल ने जाने क्या सोचा? शाहनी के निकट आ खड़े हुए। बेगू आज शाहनी की ओर देख नहीं पा रहा। धीरे से ज़रा गला साफ़ करते हुए कहा, "शाहनी, रब्ब नू एहीं

मंजूर सी।''

शाहनी के कदम डोल गए। चक्कर आया और दीवार के साथ लग गई। इसी दिन के लिए छोड़ गए थे शाह जी उसे ? बेजान-सी शाहनी की ओर देखकर बेगू सोच रहा है, ''क्या गुजर रही है शाहनी पर ! मगर क्या हो सकता है! सिक्का बदल गया है . . .।''

शाहनी का घर से निकलना छोटी-सी बात नहीं। गाँव का गाँव खड़ा है हवेली के दरवाजे से लेकर उस दारे तक, जिसे शाह जी ने अपने पुत्र की शादी में बनवा दिया था। तब से लेकर आज तक सब फैसले सब मशविरे यहीं होते रहे हैं। इस बड़ी हवेली को लूट लेने की बात भी यहीं सोची गई थी। यह नहीं कि शाहनी कुछ न जानती हो वह जानकर भी अनजान बनी रही। उसने कभी बैर नहीं जाना। किसी का बुरा नहीं किया। लेकिन बूढ़ी शाहनी यह नहीं जानती कि सिक्का बदल गया है।

देर हो रही थी। थानेदार दाऊद खाँ जरा अकड़कर आगे आया और ड्योढ़ी पर खड़ी निर्जीव छाया को देखकर ठिठक गया। वही शाहनी है जिसके शाह जी उसके लिए दरिया के किनारे खेमे लगवा दिया करते थे। यह तो वही शाहनी है जिसने उसकी मँगेतर को सोने के कर्नफूल दिए थे। मुँह-दिखाई में। अभी उसी दिन जब वह ''लीग'' के सिलसिले में आया था तो उसने उद्दंडता से कहा था , ''शाहनी भागोवाल मसीत बनेगी, तीन सौ रुपया देना पड़ेगा।'' शाहनी ने अपने उसी सरल स्वभाव से तीन सौ रुपए आगे रख दिए थे। और आज ... ?

''शाहनी !'' दाऊद खाँ ने आवाज़ दी। वह थानेदार हैं, नहीं तो उसका स्वर शायद आँखों में उतर आता।

शाहनी गुम-सुम कुछ न बोल पाई।

''शाहनी !'' ड्योढ़ी के निकट जाकर बोला, ''देर हो रही है शाहनी। (धीरे से) कुछ साथ रखना हो तो रख लो। कुछ साथ बाँध लिया है ? सोना-चाँदी ...''

शाहनी अस्फुट स्वर में बोली, ''सोना-चाँदी, जरा ठहरकर सादगी से कहा, 'सोना-चाँदी'। बच्चा वह सब तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक-एक ज़मीन में बिछा है।''

दाऊद खाँ लज्जित-सा हो गया। ''शाहनी तुम अकेली हो, अपने

पास कुछ होना जरूरी है। कुछ नकदी ही रख लो। वक्त का कुछ पता नहीं ...।"

"वक्त ?" शाहनी अपनी गीली आँखों से हँस पड़ी। "दाऊद खाँ, इससे अच्छा वक्त देखने के लिए क्या मैं जिंदा रहूँगी। " किसी गहरी वेदना और तिरस्कार से कह दिया शाहनी ने।

दाऊद खाँ निरुत्तर है। साहस कर बोला, "शाहनी कुछ नकदी जरूरी है।"

"नहीं बच्चा, मुझे इस घर से," शाहनी का गला रुँध गया "नकदी प्यारी नहीं। यहाँ की नकदी यहीं रहेगी।"

शेरा पास आ खड़ा हुआ। दूर खड़े-खड़े उसने दाऊद खाँ को शाहनी के पास देखा तो शक गुजरा कि हो न हो कुछ मार रहा है शाहनी से। "खाँ साहब देर हो रही है . . . "

शाहनी चौंक पड़ी। देर ... मेरे घर में मुझे देर ! आँसुओं की भँवर में न जाने कहाँ से विद्रोह उमड़ पड़ा। मैं पुरखों के इस बड़े घर की रानी और यह मेरे ही अन्न पर पले हुए ... नहीं, यह सब कुछ नहीं। ठीक है-देर हो रही है-देर हो रही है-शाहनी के जैसे कानों में यहीं गूँज रहा है। देर हो रही है - पर नहीं शाहनी रो-रोकर नहीं, शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से, मान से लाँघेगी यह देहरी, जिस पर एक दिन बहूरानी बनकर आ खड़ी हुई थी। अपने लड़खड़ाते कदमों को सँभालकर शाहनी ने दुपट्टे से आँखें पोंछी और ड्योढ़ी से बाहर हो गई। बड़ी-बूढ़ियाँ रो पड़ीं। उनके दुःख-सुख की साथिन आज इस घर से निकल पड़ी है। किसकी तुलना हो सकती थी इसके साथ ! खुदा ने सब कुछ दिया था मगर दिन बदले, वक्त बदले ...

शाहनी ने दुपट्टे से सिर ढाँपकर अपनी धुँधली आँखों में से हवेली को अंतिम बार देखा। उसने दोनों हाथ जोड़ लिए - यही अंतिम दर्शन था, यही अंतिम प्रणाम था। शाहनी ने ज़ोर मारा-सोचा, एक बार घूम-फिरकर पूरा घर क्यों न देख आऊँ मैं? जी छोटा हो रहा है, पर ज़िनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही है उनके सामने वह छोटी न होगी। इतना ही ठीक है। बस हो चुका। सिर झुकाया। ड्योढ़ी के आगे कुलवधू की आँखों से निकल कर कुछ बूँदें चू पड़ीं। शाहनी चल दी-ऊँचा-सा भवन पीछे खड़ा रह गया। दाऊद खाँ, शेरा, पटवारी, जैलदार और

छोटे-बड़े, बच्चे, बूढ़े, मर्द, औरतें सब पीछे-पीछे।

ट्रकें अब तक भर चुकी थीं। शाहनी अपने को खींच रही थी। गाँव वालों के गलों में जैसे धुआँ उठ रहा है। शेरे, खूनी शेरे का दिल टूट रहा है। दाऊद खाँ ने आगे बढ़कर ट्रक का दरवाजा खोला। शाहनी बढ़ी। इस्माइल ने आगे बढ़कर भारी आवाज़ से कहा, "शाहनी कुछ कह जाओ। तुम्हारे मुँह से निकली असीस झूठ नहीं हो सकती।" और अपने साफे से आँखों का पानी पोंछ लिया। शाहनी ने उठती हुई हिचकी को रोककर रुँधे-रुँधे गले से कहा, "रब्ब तुहानू सलामत रखे बच्चा, खुशियाँ बख्शे...।"

वह छोटा-सा जनसमूह रो दिया। जरा भी दिल में मैल नही शाहनी के और हम शाहनी को नहीं रख सके। शेरे ने बढ़कर शाहनी के पाँव छुए। "शाहनी कोई कुछ नहीं कर सका। राज ही पलट गया" शाहनी ने काँपता हुआ हाथ शेरे के सिर पर रखा और रुक-रुक कहा,

"तैनू भाग जगण चन्ना।" (ओ चाँद, तेरे भाग्य जागें)। दाऊद खाँ ने हाथ का संकेत किया। कुछ बड़ी बूढ़ियाँ शाहनी के गले लगीं और ट्रक चल पड़ी।

अन्न-जल उठ गया। वह हवेली, नई बैठक, ऊँचा चौबारा, बड़ा 'पसार' एक-एक करके घूम रहे हैं शाहनी की आँखों में। कुछ पता नहीं ट्रक चल रहा है या वह स्वयं चल रही है। आँखें बरस रही हैं। दाऊद खाँ विचलित होकर देख रहा है इस बूढ़ी शाहनी को। कहाँ जाएगी अब वह ?

"शाहनी मन में मैल न लाना। कुछ कर सकते तो उठा न रखते। वक्त ही ऐसा है। राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है ...।"

रात को शाहनी जब कैम्प में पहुँचकर ज़मीन पर पड़ी तो लेटे-लेटे आहत मन से सोचा, "राज पलट गया है ... सिक्का क्या बदलेगा ? वह तो मैं वहीं छोड़ आई ..."

और शाहनी की आँखें और भी गीली हो गईं।

आसपास के हरे-हरे खेतों से घिरे गाँवों में रात खून बरसा रही थी . . .।

शायद राज पलटा भी खा रहा था और . . . सिक्का बदल रहा था।

प्रश्न-अभ्यास

1. नीचे रेत में अगणित पाँवों के निशान देखकर शाहनी क्यों सहम-सी उठी?
2. दरिया-किनारे खड़ी शाहनी बीती हुई घटनाओं को क्यों याद कर रही थी ?
3. शेरा कौन था ? उसने पास पड़ा गँड़ासा ''शटाले'' के ढेर में क्यों छिपा दिया ?
4. शेरा चाहते हुए भी सिर पर आने वाले खतरे की बात शाहनी को क्यों नहीं बता सका ?
5. ''शाहनी, हमने कभी न सोचा था।'' नवाब बीबी का यह कथन किस स्थिति की ओर संकेत करता है ?
6. आशय स्पष्ट कीजिए :
   (क) ''शाहनी का घर से निकलना छोटी बात नहीं।''
   (ख) ''मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है।''
7. बिदा होते समय शाहनी द्वारा दी गई आशीष ''तैनू भाग जगण चन्ना (ओ चाँद तेरे भाग्य जागें)'' सुन कर शेरा की मनः स्थिति की कल्पना कीजिए।
8. कहानी की किन-किन पंक्तियों से शाहनी की निम्नांकित विशेषताओं का पता चलता है।
   (क) ममतामयी शाहनी
   (ख) स्वाभिमानी शाहनी
   (ग) व्यथित शाहनी
   (घ) कुलवधू शाहनी
9. इस कहानी का मुख्य उद्देश्य क्या है ?
   (क) शेरा की सांप्रदायिक भावना का वर्णन करना।
   (ख) शाहनी की दयनीय स्थिति का वर्णन करना।
   (ग) शाहनी के प्रति गाँव के लोगों का प्रेम भाव दिखलाना।
   (घ) विभाजन के प्रभावों का उल्लेख करना।
   (ङ) शाहनी का सब कुछ छोड़ कर पाकिस्तान से भारत आने का कारण बताना।
10. हवेली छोड़ते समय शाहनी की मनोव्यथा का वर्णन कीजिए।
11. शाहनी के चरित्र के आधार पर सिद्ध कीजिए कि विरोधी परिस्थितियों में मानव-हृदय की संवेदना तथा ममता और उभर कर सामने आती है।
12. यह कहानी जिस ऐतिहासिक एवं राजनीतिक घटना से जुड़ी है, हमारे देश पर उसके प्रभाव का उल्लेख कीजिए।

13. भारत-विभाजन को आधार मानकर अन्य लेखकों ने भी कहानियाँ लिखी हैं। ऐसी एक कहानी है ''पानी और पुल'' (लेखक डॉ. महीप सिंह)। उसकी घटनाओं की तुलना प्रस्तुत कहानी से कीजिए।

शाह — स्वामी, राजा, सम्राट
शाहनी।

शेरा - घरेलू सेवक शाहनी का
धार्मिक विद्वेष की भावना
विभाजन के समय हिन्दू मुसलमानों में परस्पर
अविश्वास की भावना
हिन्दुओं की कतल करना, घर से बेघर करने की
योजनाएँ बनती थी।

भगवतशरण उपाध्याय
(1910-82)

भगवतशरण उपाध्याय का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में उजियापुर ग्राम में हुआ। आपने संस्कृत-वाङ्मय, हिन्दी साहित्य, इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व का गहन अध्ययन किया, जिसके फलस्वरूप भारत के प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। कुछ समय तक बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की शोध-पत्रिका का संपादन करने के बाद वे पुरातत्व विभाग, प्रयाग संग्रहालय में रहे और फिर लखनऊ संग्रहालय के अध्यक्ष बने। कालांतर में वे बिड़ला महाविद्यालय, पिलानी में प्राध्यापक, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में प्रकाशित हिन्दी विश्वकोश के संपादक-मंडल के सदस्य तथा विक्रम विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष रहे। भारत के इतिहास एवं संस्कृति में गहरी पैठ होने के कारण उनको मारिशस में भारत का राजदूत बनाया गया। उसी पद पर कार्य करते हुए उनकी मृत्यु हुई।

उन्होंने विदेशों में अनेक बार अपने व्याख्यानों द्वारा भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के गौरव को उजागर किया।

उन्होंने हिन्दी साहित्य को सौ से भी अधिक पुस्तकें प्रदान कीं जिनमें अधिकतर निबंध एवं संस्मरण हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं : **विश्व साहित्य की रूपरेखा, साहित्य और कला, सागर की लहरों पर, इतिहास साक्षी है, कालिदास का भारत, सांस्कृतिक निबंध, गंगा-गोदावरी, बुद्ध वैभव, कादंबरी, ठूँठा आम, विश्व को एशिया की देन।** **वीमेन इन ऋग्वेद, इंडिया इन कालिदास और द एंशेंट वर्ल्ड**, उनकी उल्लेखनीय अंग्रेजी पुस्तकें हैं।

उपाध्याय जी की गद्य-शैली आलंकारिक एवं विवेचन भावुकता पूर्ण है। चित्रभाषा का प्रयोग, कहीं-कहीं रेखाचित्र-शैली का समावेश, उदाहरण शैली द्वारा विषय स्पष्टीकरण और सामान्यतः तत्सम शब्दावली उनकी भाषा-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

संकलित पाठ ठूँठा आम एक ललित निबंध है, जिसमें आम के एक सूखे वृक्ष के माध्यम से लेखक ने संसार के उपयोगितावादी दृष्टिकोण का बड़ा ही मार्मिक एवं भावपूर्ण विवेचन किया है। एक समय के सरस, सघन आम वृक्ष के कालांतर में रसहीन, छायाहीन, पत्रहीन बनने पर उसकी मनोव्यथा का वर्णन निश्चय ही हृदय को छू लेता है, लेकिन नैराश्य के इन क्षणों में भी लेखक यह विश्वास जगाता है कि पतझड़ आ गया तो क्या, वसंत भी तो दूर नहीं।

10. ठूँठा आम

वह ठूँठा आम, जो चौराहे पर खड़ा है, सदा से ठूँठा नहीं है। दिन थे, जब वह हरा-भरा था और उस जनसंकुल चौराहे पर अपनी छतनारी डालियों से बटोहियों की थकान अनजाने दूर करता था।

पर मैंने उसे सदा ठूँठ ही देखा है। पत्रहीन, शाखाहीन, निरवलंब, जैसे पृथ्वी रूपी आकाश से सहसा निकलकर अधर में ही टँग गया हो। रात में वह काले भूत-सा लगता है, दिन में उसकी छाया इतनी गहरी नहीं हो पाती जितना काला उसका जिस्म है और अगर चितेरे को छायाचित्र बनाना हो तो शायद उसका-सा ''अभिप्राय'' और न मिलेगा। प्रचंड धूप में भी उसका सूखा शरीर उतनी ही गहरी छाया ज़मीन पर डालता जैसे रात की उजियारी चाँदनी में।

मैंने उसे सदा ठूँठ ही देखा है। सही, मेरे जीवन के साल कुछ बे-हिसाब लंबे नहीं, फिर भी कुछ कम भी नहीं है और कम से कम दशकों की परंपरा तो उनमें है ही। और जब से होश सँभाला है, जब से आँख खोली है, देखने का अभ्यास किया है, तब से बराबर मुझे उसका निस्पंद, नीरस, अर्थहीन शरीर ही दीख पड़ा है। पर पिछली पीढ़ी के जानकार कहते हैं कि एक जमाना था जब पीपल और बरगद भी उसके सामने शरमाते थे और उसके पत्तों से, उसकी टहनियों और डालों से टकराती हवा की सरसराहट दूर तक सुनाई पड़ती थी। पर आज वह नीरव है, उस चौराहे का जवाब जिसपर उत्तर-दक्खिन, पूरब-पश्चिम चारों ओर की राहें आ मिलती हैं और जिनके सहारे जीवन अविरल बहता है। जिसने कभी जल को जीवन की संज्ञा दी उसने निश्चय जाना होगा कि प्राणवान् जीवन भी जल की ही भाँति विकल, अविरल बहता है। सो प्राणवान्, जीवन, मानव संस्कृति का उल्लास-उपहास लिए उन चारों

राहों की संधि पर मिलता था जिसके एक कोण में उस प्रवाह से मिल एकांत शुष्क आज वह ठूँठ खड़ा है। उसके अभाग्यों की परंपरा में संभवतः एक ही सुखद अपवाद है-उसके अंदर का स्नेहरस सूख जाने से संज्ञा का लोप हो जाना। संज्ञा लुप्त हो जाने से कष्ट की अनुभूति कम हो जाती है। सो, उस ठूँठ को सर्वथा अभागा तो नहीं कहा जा सकता।

दूर-दूर के वणिक चारों राहों अपना सौदा लिए आते-जाते हैं। आस-पास के पेड़ों की सघन छाया में उनके ऊँट, उनकी गाड़ियाँ खड़ी रहती हैं और उस सूखे आम से जब-तब बस कोई पागल कभी लिपट जाता है। कोई साँड़ कभी उसे सींग मार देता है, कोई सियार उसकी सूखी उखड़ी जड़ों में बैठ रात में रो उठता है।

पर जैसा जानकारों ने बताया, कभी वह पेड़ हरा था, उसकी जड़ें धरती की नरम-नरम मिट्टी से दबी थीं और उसकी छतनार डालें आकाश में ऐसी फैली हुई थीं जैसे विशाल पक्षी के डैने। और उन डालियों के कोटरों में अनगिनत घोंसले थे। पनाह के नीड़, बसेरे। दूर बियाबाँ से लौटकर पक्षी उनमें बसेरा करते, रात की भीगी गहराई में खोकर सुबह दिशाओं की ओर उड़ जाते।

और मैं जो उस पेड़ के ठूँठपन पर कुछ दुखी हो चुप हो जाता तो वह जानकार कहता, उसने वह कथा कितनी ही बार कही, आँखों देखी बात है, इस पेड़ की सघन छाया में कितने बटोहियों ने गए प्राण पाए हैं, कितने ही सूखे हरे हुए हैं। सुनो उसकी कथा, सारी बताता हूँ और उसने बताया, जलती दुपहरी में मरीचिका की नाचती आग के बीच यह पेड़ हरा-भरा झूमता पत्तों के विस्तृत ताज को सिर से उठाए। आँधी और तूफान में उसकी डालें एक दूसरे से टकरातीं, टहनियाँ एक-दूसरे में गुँथ जातीं और जब तपी धरती बादलों की झरती-झींसी रोम-रोम से पीती और रोम-रोम सजीव कर उनमें से लता प्रतानों के अंकुर फोड़ देती तब पेड़ जैसे मुसकराता और बढ़ती लताओं की डाली रूपी भुजाओं से जैसे उठाकर भेंट लेता। लता-बल्लरियाँ, जड़ से, छाया भूमि से उठ-उठ कर उसके स्कंध देश से, तने से, फूटती संधियों से, अंकुरित होती टहनियों से लिपट जातीं, झूम-झूम बल खातीं, और हवा भी स्पर्श से उद्वेलित स्कंध देश पर, तने पर, डालों और टहनियों पर चुपचाप अपने बालों भरे सिर रख देती। उस विशाल तरु में तब बड़ा रस था उसकी टहनी-टहनी,

डाली-डाली, पोर-पोर में रस था और उसे छलका-छलका वह लता-वल्लरियों को निहाल कर देता। अनंत लताएँ, अनंत बल्लरियाँ पावस में उसके अंग-अंग से, उसकी फूटती संधियों से लिपटी रहतीं और देखने वाले बस उसके सुख को देखते रह जाते।

और मेरा वह जानकार बुजुर्ग एक लंबी साँस लेकर थका-सा कह चलता कि तुम क्या जानो, जिसने केवल पावस और बसंत ही देखे हैं, निदाघ और पतझड़ न देखे, केवल अंकुर और कोपलें ही फूटती देखी हैं, सूखती साँस न देखी, पीले झड़ते पत्ते न देखे ? फिर एक दिन, एक साल कुछ ऐसा हुआ कि जैसे सब कुछ बदल गया। जहाँ वसंत के आते ही पत्रों के-से कोमल पत्ते उस वृक्ष की टहनियों से हवा में डोलने लगते थे, वहाँ उस साल फिर वे पत्ते न डोले, वे टहनियाँ सूख चलीं। दूर दिशाओं से आकर उस पेड़ के नीड़ों में विश्राम करने वाले पक्षी उसकी छतनार डालों से उड़ गए। जहाँ अनंत-अनंत कोयलें कूका करती थीं। बौराई फुनगियों पर भौरों की काली पंक्तियाँ मँडराया करती थीं, सहसा उस पेड़ का रस सूख चला।

और जैसे उसे बसेरा लेने वाले पक्षी छोड़ चले, जैसे कूकती कोयलें, टेरते पपीहे, मँडराते भौंरे उसके अनजाने हो गए। वैसे ही लता वल्लरियाँ भी उसके स्कंध देश से, उसकी फैली मजबूत डालियों से, उसकी मदमाती झूमती टहनियों से धीरे-धीरे उतर गईं, कुछ सूख गईं, मर गईं। उस लता-संपदा के बीच फिर भी एक मधुर मदिर पुष्पवती पराग भरी वल्लरी उससे लिपटी रही, और ऐसी कि लगता कि प्रकृति के परिवर्तन उसपर असर नहीं करते। वासंती जैसे सारी त्रुटियों में रसभरी वासंती बनी रहती। सहकार वृक्ष से लिपटी वल्लरियों की उपमा कवियों ने अनेकानेक दी है। पर वह तो साहित्य और कल्पना की बात थी, उसे कभी चेता न था, पर चेता मैंने उसे अब, जब उस एकांत वल्लरी को उस प्रकांड तरु से लिपटे पाया। लगा जैसे काल ठमक गया है, जैसे सदियाँ एक के बाद एक जमाने की राह उतरती जाएँगी, पर वल्लरी पेड़ से अलग न होगी, दोनों के संबंध में व्यवधान न होगा। और उन्हें एक दूसरे से लिपटे जो कोई देखता उनके चिर विलास का, चिर सुख का, कभी अंत न होने वाले संबंध का आशीर्वाद देता।

पर विधाता से किसी का सुख कब देखा गया ? वल्लरी वृक्ष से

अलग हो गई, वृक्ष सूख गया, तुम्हारे सामने आकाश का परिकर बाँधे वह खड़ा है।

पर वल्लरी ? वल्लरी सूखी नहीं, मात्र उस वृक्ष से हट गई। उस दूसरे वृक्ष को देखते हो न? उस तनवान, प्राणवान, पुलकित, रसाल को, जिस पर आज भी कोयल कूकती है, पपीहे टेरते हैं,भौंरे मँडराते हैं। उसी तरु से वह वल्लरी अब जा लिपटी है।

यह रसाल जीवन के शैशव से निकलकर तारुण्य के उल्लास से उलझा हुआ है, उसके जीवन के पोर-पोर से सरकती हुई वह वल्लरी उससे जा गुँथी है। एक दिन वह वल्लरी उस वृक्ष-पुरातन की डालियों से उसकी जड़ों में जा गिरी और उसके पोर-पोर चढ़ती सारे तन पर उल्लास से छा गई, उसके मस्तक पर उसने अपना मदिर मकरंद बिछा दिया और अब वह उसे सर्वतः घेरकर उसकी टहनी-टहनी छाए घूमती है।

और यह अभिराम नूतन वृक्ष ?

उस ठूँठ की तरफ़ देखो जिसकी काया में रस कहीं दीखता नहीं। पर एक दिन जब उससे रस चूता था, एक दिन जब वह रसाल था, जब सुए उसके खट्टे आमों को अपनी तीखी चोंचों की चोट से मीठा कर देते, तब अकाल अनेक फल पेड़ से टपक पड़ते। उन्हीं में से पके सूखे फल की गुठली एक दिन आँधी से थोड़ी दूर पर जा गिरी। पावस की फुहारों ने मिट्टी ऊपर बिछाई और बरसात के बीच धीरे-धीरे उस मिट्टी से एक अंकुर फूट पड़ा। उसकी पीली-सफ़ेद एक सूत की जड़ मिट्टी के ऊपर आ गई थी। और उससे भी ऊपर दो दालें थीं जैसे गुठली की दो रानें, और ऊपर एक लाल अकेला नरम पल्लव था।

समय बीतता गया। ऋतुओं का संचरण अपने वृत्त में घूमने लगा और जैसे-जैसे ऋतुएँ अपने वृत्त में घूमतीं वैसे ही वैसे उस अंकुर में साँस पड़ती जाती। दूर का वृक्ष उस बढ़ते अंकुर को जैसे धूप में अपनी छाया देता, पाले में अपनी छाया से उसकी सर्दी का निवारण करता और उसके तनते तन को देख जैसे अघा उठता।

और एक दिन जब अपनी गुठली से निकले उस अंकुर पर वृक्ष ने संतोष की निगाह डाली, उसके ऊर्जस्वित उन्नत काय को देख [illegible] उल्लसित हुआ, तभी सहसा उसकी दृष्टि उस वल्लरी पर जा पड़ी

उस तरुण वृक्ष के रोम-रोम को घेरे, उसके नये छतनार मस्तक के ऊपर एक साँस झूम रही थी। वृक्ष की दृष्टि सहसा लौटी, अपने तन पर पड़ी और उसे उसने सूना पाया-उसकी चिरंतन वल्लरी वहाँ न थी।

उसके सारे बचे पत्ते सहसा मुरझा गए, सहसा पीले पड़ गए, एक-एक कर नीचे गिर गए। टहनियाँ डालों में समा गईं। डालें जैसे तने में खो गईं। तने को सँभालने के लिए जड़ें मिट्टी के भीतर से उभर आईं और तब से वह महाकाय तरु जिसके नीड़ों में अनंत स्नेह पलता था, ठूँठ हो गया और आज युगों से बहते जीवन के चौराहे पर वह बदलती परिस्थितियों का मूर्तिमान त्रास बना चुपचाप खड़ा है। वृक्ष जड़ हो गया है, आज निस्पंद है, निरभिलाष, सुन्न !

"पर एक बात कहूँ ? मानोगे ?" जानकार ने पूछा।

कहा, "मानूँगा।" भला मानता कैसे नहीं, बुजुर्ग की कड़आई आँखें अब भी बता रही थीं कि उसकी कथा का अक्षर-अक्षर सही है, फिर संदेह को स्थान कहाँ था ? कहा, "मानूँगा बोलो।"

अद्‌भुत भाव-संज्ञा से पुलकित होता-सा बुजुर्ग कहता, "वृक्ष सूख गया है, कहते हैं, निर्जीव है, पर मैंने कुछ देखा है, और जो देखा है वह बस देखने की बात है, कहने की नहीं। जब नवतरु वसंत के निरालस रस वितान में अँगड़ाती हुई अपनी वासंती वल्लरी को अभिनव तरुण मृदुल प्यार से भेंटता है तब जैसे इस ठूँठे पेड़ में सहसा साँस पड़ जाती है, और मैंने देखा है उसकी एक शिरा आज भी हरी है। उठो, तुम भी देखो मधु की इस दहकती रजनी में जब नवतरु वल्लरी के पाश में बँधा अँगड़ा रहा है वह शिरा निश्चय हरी दीख पड़ेगी-उठो, देखो !"

उठा, पास जाकर मैंने देखा, बुजुर्ग की उँगली की सीध में सूखे पेड़ के अंतराल में एक व्यंजित शिरा जैसे हरी हो आई थी, पन्ने की-सी हरी।

प्रश्न-अभ्यास

1. ठूँठा आम की विडंबना को स्पष्ट कीजिए।
2. ठूँठ होने पर भी लेखक आम को निपट अभागा मानने के लिए क्यों तैयार नहीं है ?

3. बुजुर्ग द्वारा कही गई ठूँठे आम के वैभवपूर्ण दिनों की कथा को अपने शब्दों में लिखिए।
4. आम से लिपटी लताओं की अनेक उपमाओं की सार्थकता का अहसास लेखक को कब और किस प्रकार हुआ ?
5. ठूँठे आम पर पड़ी वह अंतिम चोट क्या थी, जिसने उसको लगभग जड़ और निर्जीव-सा ही बना दिया?
6. ठूँठे आम की एक शिरा के हरा-भरा रह जाने का रहस्य क्या था ? निम्नांकित में से सही विकल्प छाँटिए:
   (क) आम को पुनः वसंत के आगमन की प्रतीक्षा थी।
   (ख) नव तरु पर अँगड़ाई लेती हुई वल्लरी को देखकर वह पुलकित हो उठता था।
   (ग) नव तरु को वह आत्मज के रूप में देखता था।
   (घ) अपनी प्रिय वल्लरी के प्रति वह कृतज्ञ बने रहना चाहता था।
7. ''जिसने दूसरों के सुख में विभोर होना सीख लिया, वह कभी जड़ता को प्राप्त नहीं हो सकता।''
   प्रस्तुत पाठ के आधार पर इस कथन की पुष्टि कीजिए।
8. निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए :
   (क) संज्ञा लुप्त हो जाने से कष्ट की अनुभूति कम हो जाती है।
   (ख) वासंती जैसे सारी त्रुटियों में रसभरी वासंती बनी रहती है।
9. ''बिहारी'' की निम्नलिखित पंक्तियों को कंठस्थ कीजिए एवं उनकी तुलना ''ठूँठा आम'' की संवेदना से कीजिए :
   जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार।
   अब अलि रही गुलाब में, अपत कँटीली डार।
10. प्रस्तुत निबंध में संस्कृत-निष्ठ शब्दावली और भावात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिए।
11. पाठ में ''नीरस'', ''निस्संद'', ''अर्थहीन शरीर'' तथा ''मधुर मदिर पुष्पवती परागभरी वल्लरी'' जैसे प्रयोगों का चयन कीजिए और उनमें निहित सौन्दर्य को स्पष्ट कीजिए।

हिमांशु जोशी

(1935)

हिमांशु जोशी का जन्म कुमाऊँ के पर्वतीय अंचल में हुआ और वहीं उनका बचपन बीता। उनकी शिक्षा-दीक्षा नैनीताल और दिल्ली में संपन्न हुई। उनमें बचपन से ही लेखन के प्रति अभिरुचि थी और उनकी पहली कहानी 1954 ई. में प्रकाशित हुई। हिमांशु जोशी ने पत्रकारिता और स्वतंत्र लेखन को अपनी आजीविका का आधार बनाया और साप्ताहिक हिन्दुस्तान के विशेष संवाददाता रहे संप्रति स्वतंत्र लेखन।

हिमांशु जोशी ने कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ, यात्रा-वृत्तांत आदि गद्य की विधाओं तथा बाल साहित्य से संबंधित लगभग 24 पुस्तकें लिखी हैं। उनकी प्रमुख प्रकाशित पुस्तकें निम्नांकित हैं :

अरण्य, महासागर, छाया मत छूना मन, कगार की आग, समय साक्षी है, तुम्हारे लिए, सुराज (उपन्यास), **अंततः, रथचक्र, मनुष्य चिह्न, जलते हुए डैने, हिमांशु जोशी की 51 कहानियाँ** (कहानी संग्रह), **उत्तर पूर्व** (विशिष्ट रचनाओं का संग्रह), **तीन तारे, बचपन की याद रही कहानियाँ, सुबह के सूरज, हिम का हाथी, विश्व की श्रेष्ठ लोककथाएँ, नार्वे: सूरज चमके आधी रात, काला पानी** (बाल साहित्य) और **अग्नि संभव** (कविता संग्रह)।

सरलता, सहजता और स्वाभाविकता हिमांशु जोशी की रचनाओं की निजी विशेषताएँ हैं। इन गुणों के कारण उनका साहित्य खूब पढ़ा जाता है। कुमाऊँ का पर्वतीय अंचल उनकी कृतियों में बड़े प्रभावशाली ढंग से चित्रित हुआ है। उनके उपन्यास **सुराज** पर कला फिल्म बनी है और **कगार की आग, कोई एक मसीहा** तथा **छाया मत छूना मन** का सफल मंचन हो चुका है। दिल्ली अकादमी ने हिमांशु जोशी को उनके

कहानी-संग्रह पर पुरस्कृत किया है और हिन्दी संस्थान उ.प्र. ने उन्हें उनकी रचनाओं **छाया मत छूना मन, मनुष्य चिह्न** और **अरण्य** के लिये सम्मानित किया है। उनकी कुछ रचनाओं का भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी, चीनी, जापानी आदि विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है।

उत्तर कुशीनारा : तथागत के अंतिम दिन हिमांशु जोशी की पुस्तक उत्तर -**पर्व** से लिया गया है जो संस्मरणात्मक शैली में लिखा है। कुशीनारा या कशिया भगवान् बुद्ध की निर्वाण-भूमि है। इस पाठ में भगवान् बुद्ध के चिंतन-दर्शन के व्यापक प्रभावों के साथ-साथ उनकी उदारता और दूरदर्शिता भी वर्णित है। उनके निम्नांकित वचन हमारे लिए स्मरणीय हैं "मेरे चले जाने के बाद तुम सबको स्वयं पर आश्रित होना है। अपना मार्ग स्वयं खोजना है। अपना दीपक स्वयं बनना है ...।"

11. कुशीनारा : तथागत के अंतिम दिन

कपिलवस्तु जाना अब संभव नहीं। समय कम है। फिर वहाँ पहुँचकर आज ही लौटना आसान नहीं। इसलिए कार्यक्रम बनता है कशिया जाने का !

"केवल 46 किलोमीटर ही तो दूर है ! शाम को वापस आना कठिन नहीं रहेगा"।

जाड़ों के झीने दिन।

उस पर गोरखपुर !

ज्यों-ज्यों निकलने की कोशिश करते हैं, त्यों-त्यों उलझते चले जाते हैं।

कशिया !

कुशीनारा !

कुशी नगर !

बुद्ध की परिनिर्वाणस्थली !

बंधुवर उदयभान मिश्र का आग्रह है कि प्रस्थान से पूर्व, उनके निर्देशन में निर्मित वृत्तचित्र कुशीनगर अवश्य देख लें।

हाँ, तो गोरखपुर में बैठे-बैठे हम 'कुशीनगर' देखने लगते हैं। किसी वृत्ताकार बौद्ध-विहार के ऊपर कहीं, दूर से जगमगाती किरणों का जाल ! उगते सूरज के सतरंगी प्रकाश बिंब ! फिर तथागत के जीवन से संबंधित तीर्थ के प्राचीन अवशेष! शयन-मुद्रा में तथागत की विशाल प्रतिमा ! वह पवित्र सरिता, उसका पावन जल, जिनमें परिनिर्वाण से पूर्व तथागत ने स्नान किया था।

कुछ ही समय में सारी झाँकी प्राप्त कर लेते हैं हम।

वास्तव में यह वृत्तचित्र नहीं, पर्दे पर साकार हुई एक जीवंत

कविता का अहसास है ...

कार में बैठे-बैठे अभी तक भी वे दृश्य स्मृति-पटल पर कहीं बार-बार घूम रहे हैं।

भीड़!

धूल से अँटी—टूटी-फूटी सड़कें!

धुआँ!

धीरे-धीरे सब कुहासे में सिमट रहे हैं। मुझे याद आता है, कुछ वर्ष पूर्व इसी तरह जल्दी-जल्दी में नालंदा गए थे। बहुत सुना था, पढ़ा था, किंतु जब देखा तो और भी अधिक घनीभूत अनुभूति का अहसास हुआ था।

छोटी-छोटी ईंटों के खंडहर। अतीत के सनातन साक्षी। इतिहास के एक-एक पृष्ठ पर, एक-एक युग की गौरव-गाथा के शिलालेख।

धरती के भीतर से झाँकती वे सिल्लियों की तरह बिछीं लंबी पाषाण-शिलाएँ, जिनपर नालंदा के मेधावी छात्र सोया करते थे। ईंट और पत्थर की छोटी-छोटी कोठरियों के आकार, उनके अध्ययन-कक्ष। कक्षों के मध्य गलियारे . . . विक्रमशिला, तक्षशिला की तरह एक अद्वितीय शिक्षा-तीर्थ! सरस्वती की उपासना-भूमि ! जहाँ नेपाल, तिब्बत, मंगोलिया, चीन, बर्मा, सिंहलद्वीप के प्रतिभाशाली छात्र आते थे, विद्या अध्ययन के लिए।

इस प्रकाश-स्तंभ से एशिया में एक नई ज्योति का विस्तार हुआ। भारतीय दर्शन, भारतीय साहित्य ही नहीं, समग्र भारत सदेह दूर-दूर तक फैला, फला, फूला।

उन विशाल अवशेषों को देखकर, उस क्षण कहीं यह भी लगता रहा कि जैसे, मैंने ही वर्षों तक शिलाओं पर बैठ कर बौद्ध वाङ्मय का पारायण किया था। बौद्ध-दर्शन की दीक्षा ली थी। ये विगत के चित्र नहीं, आगत के ऐतिहासिक जीवंत काल-खंड भी हैं।

पीत चीवर !

भिक्षापात्र !

बुद्धम् शरणम् !

फिर राजगीर के चरणों तक पहुँच कर लौट आए थे समयाभाव के कारण।

कोई मेला लगा था।भिखारियों एवं कुष्ठ रोगियों का जमघट। लोग इतने गरीब भी हो सकते हैं, इसकी कल्पना सहज नहीं।

उरबेला देखने की, जहाँ तथागत ने तपस्या की थी, आकांक्षा पूरी न हो पाई थी ...

निरंतर पैंतालीस वर्ष तक बुद्ध अपने धर्म तथा संघ का प्रचार करते रहे थे। वैशाली, जेतवन, श्रावस्ती, राजगृह, सारनाथ, बोधिगया — जहाँ-जहाँ वे गए, वहाँ-वहाँ नई चेतना का ज्वार उमड़ता चला गया . . .

उनके जीवन के अंतिम दिनों का बड़ा सजीव वर्णन 'महापरिनिव्वान सुत्त'' में हुआ है।

उस वर्ष, वर्षावास से पूर्व तथागत राजगृह में थे। वहीं से एक विशाल भिक्षु-संघ के साथ उन्होंने अपनी यात्रा आरंभ की और वैशाली पहुँचे। पास ही बेलुव ग्राम में उन्होंने वर्षावास का निश्चय किया। भिक्षुओं को निकट के गाँवों में भिक्षाटन की अनुमति दे दी थी।

यह अंतिम वर्षावास था बुद्ध का, कहीं ऐसा अहसास हो गया था उन्हें। वे कुछ-कुछ रुग्ण तो कुछ समय से चले ही आ रहे थे, किंतु उन्होंने उसे दबाए रखा ...

अस्सी वर्ष की अवस्था हो चुकी थी। ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था, इस बात का अहसास तीव्रता से हो रहा था कि निर्वाण की वेला में अब अधिक देर नहीं। किंतु भिक्षु-संघ को अंतिम बार देखे बिना बुद्ध देह त्याग कैसे सकते थे? इसलिए चुपचाप व्याधि सहते रहे।

एक दिन आनंद ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, 'भदंत, हमारे लिए यह कम हर्ष का विषय नहीं कि आपकी व्याधि कुछ कम हुई है जिससे मेरी चिंता का निवारण हुआ है। भिक्षु-संघ को अंतिम उपदेश दिए बिना भगवान् परिनिर्वाण कैसे प्राप्त कर सकते हैं?'

यह 'उपदेश' शब्द तथागत के हृदय में कहीं चुभा। किंचित् मंद स्वर में बोले, आनंद, ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे मैंने तुमसे या भिक्षु-संघ से छिपा कर रखा हो। भिक्षु-संघ का मैं नायक बनूँ, मुझ पर आश्रित रहे संघ, ऐसी भी मेरी धारणा कभी नहीं रही। जो व्यक्ति ऐसा सोचेगा, वही संघ को अंतिम उपदेश देने की भ्रामक बात कहेगा ...

अब मैं वृद्ध हो चला आनंद! जरा-जीर्ण हो चुकी यह काया! इस

गिरती देह को, ज्यों-ज्यों चलाए रखने के पक्ष में भी मैं नहीं हूँ ....

आनंद की अम्लान आकृति में कहीं चिंता की मलिन रेखाएँ घिर आईं। तथागत सचमुच जाने की सोच रहे हैं, इस सत्य को जानकर भी वे स्वीकार करने की स्थिति में नहीं थे।

'तो हमारे लिए क्या अभीष्ट हैं भंते?' शोकाकुल स्वर में उन्होंने पूछा।

'इसमें शोक का प्रश्न कहाँ है आनंद?' तथागत ने समझाते हुए कहा-'मेरे चले जाने के बाद तुम सबको स्वयं पर आश्रित होना है। अपना मार्ग स्वयं खोजना है। अपना दीपक स्वयं बनना है ...। इसलिए तुम आत्मा की शरण में जाओ ... धर्म की शरण में ... मैंने जिस धर्म और विनय का उपदेश दिया है, मेरे परिनिर्वाण के बाद वे ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेंगे ...'

वर्षावास की समाप्ति पर तथागत बेलुव ग्राम से लौट आए वैशाली।

महावन की कूटागार शाला में अनेक भिक्षु एकत्र हो आए थे। उन्हें भी आभास हो चुका था कि महावन की इस धरती को पवित्र करने, तथागत के चरणकमल अब लौट कर दुबारा नहीं आएँगे ...

और एक दिन प्रातः वेला में बृहत् शिष्य-समुदाय के साथ तथागत चल पड़े भाँड़ा ग्राम की ओर।

लिच्छवियों के प्रति तथागत का सदैव स्नेहभाव रहा। इसलिए वैशाली से विदा होते समय उन्होंने अपना प्रिय भिक्षा-पात्र स्मृति -स्वरूप लिच्छवियों को दे दिया ...

कूटागार शाला, महावन से चरण बढ़ रहे थे धीरे-धीरे। वैशाली का अपनत्व भरा परिवेश भी छूट रहा था। वैशाली में ही प्रथम बार भिक्षुणी संघ की स्थापना हुई थी। बोधि प्राप्ति के पाँचवे वर्ष तथागत वैशाली के कूटागार में ठहरे थे। आनंद के अनुरोध पर माँ गौतमी को तथागत ने संघ की स्थापना की अनुमति दी थी। विनयपिटक के कई महत्त्वपूर्ण सूत्र वैशाली में ही रचे गए थे ...

'भंते, किस मार्ग से, कहाँ जाना है ...?' आनंद ने पूछा था।

'हस्तिग्राम', 'आम्रग्राम', 'जंबुग्राम', 'भोग नगर' और ... 'पावा नगरी' तक आते-आते तथागत सहसा मौन हो गए थे।

जहाँ-जहाँ तथागत पहुँचते उनके प्रवचन सुनने के लिए, अपार जन-समुदाय उमड़ता चला जाता।

कई दिनों के प्रवास के पश्चात्, अंत में पावा नगरी के निकट पहुँचे। उस दिन भिक्षु-संघ को संबोधित करते हुए बुद्ध ने कहा था, अर्थ न जानने से धर्म का विनाश होता है भिक्षुओ ! अतः विश्व में विवेकशील वही है जो तत्वतः अर्थ ग्रहण करता है .. जिनका हृदय पावन है उन्हीं के आप्त वचन का अनुशीलन करना चाहिए - वही वचन धर्म है, वही वचन विनय है, वही वचन ज्ञान है-वही वचन मेरा भी वचन है भिक्षुओ !

पावा नगरी में मल्लों ने तथागत का इस बार अभूतपूर्व स्वागत किया। चुंद ने अपने आम्रवन में विश्राम करने के लिए आमंत्रित किया, जिसे तथागत ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

चुंद के ही घर भगवान् तथा भिक्षु-संघ ने भोजन भी प्राप्त किया। जो भोजन तथागत के लिए परोसा गया, उसमें 'सूकरमद्दव' भी था।

उसे ग्रहण करते ही, तथागत अतिसार से पीड़ित हो उठे। दबी व्याधि भी उभर आई ....

चुंद तथागत को विदा देने इरावती नदी के पार तक आया। और आम्रवन में, सरोवर-तट पर कुछ क्षण तथागत ने विश्राम भी किया . . .

वहाँ से तथागत आगे बढ़े —कुशीनारा की ओर।

'आनंद, लोग चुंद को दोष देंगे कि उसके घर भोजन प्राप्त करने के कारण तथागत अस्वस्थ हो गए थे ... वस्तुतः ऐसा नहीं है आनंद ! चुंद ने जो भी भिक्षा में दिया सब स्नेहवश ही दिया। इसलिए उसे दोष न देना, वह दोष-मुक्त है . . .' तथागत बोले।

तभी सामने हिरण्यवती नदी दीखी।

तथागत अंतिम स्नान कर, निकट ही शालवन की ओर बढ़े।

"हे आनंद, इन दो शाल वृक्षों के मध्य मेरा शयन रचो। यहीं मैं निर्वाण चाहता हूँ।"

दो विशाल शाल-वृक्ष, इन शाल-वृक्षों के बीच मैं खोज रहा हूँ और खोज रहा हूँ, - उनके मध्य शयन की मुद्रा में लेटे तथागत को।

"इस गहरे कुहासे में आगे बढ़ पाना कठिन है" भाई मुद्‌गल की आवाज से तंद्रा-सी टूटती है।

"इतना धुंध, इतना कुहासा मैंने पहले कभी नहीं देखा" ड्राइवर

कहता है, "इसी रोड पर कल एक्सीडेंट में पाँच आदमी मर गए थे ...।"

अभी भी शाल-वन का सिलसिला चल रहा है - चल रही है गाड़ी।

एक पुल आता है सिमेंट का।

"इसी छोटी गंडकी को पार करके तथागत कुशीनारा पहुँचे थे।" मिश्रजी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए, किंचित सोच में डूब कर कहते हैं '. . इसका जिक्र फाहियान ने भी किया था।'

'कुशीनगर सही सलामत किसी तरह पहुँच तो जाएँगे, पर आज ही लौट पाना संभव लगता नहीं,' मुद्गल कहते हैं।

उनके स्वर में चिंता है-अनिश्चितता।

हम बदलने के लिये कपड़े तो लाए ही नहीं, फिर रात को क्या पहनेंगे ?

रात घिर आई है। और भी घनी लग रही है, कुहरे के कारण।

कुशीनगर निकट आता चला आ रहा है।

बस्ती है, गाँव है, खेत हैं, खलिहान।

कुछ ही कदम बढ़ने पर चौराहा।

प्रशांत मुद्रा में बैठे तथागत की प्रतिमा।

दाहिनी ओर ... महानिर्वाण पथ।

गाड़ी इसी पथ पर आगे बढ़ रही है।

जाड़ों के दिन-ठिठुरन-भरे सवा आठ बज चुके हैं। चारों ओर अँधियारे की काली चादर तनी है।

'अंतर्राष्ट्रीय-गेस्ट, हाउस' के विशाल प्रांगण में गाड़ी मुड़ कर रुकती है।

भिक्षु बुद्धमित्र बाहर निकलते हैं। मिश्रजी के पुराने आत्मीय। बड़ी आत्मीयता से मिलते हैं। ठहरने की भी व्यवस्था कर देते हैं।

पर इसी व्यवस्था में लगभग दस बज जाते हैं।

सर्दी इतनी है कि नींद आना आसान नहीं लगता। तराई का क्षेत्र होने के कारण पहाड़ों के मौसम का प्रभाव है। अभी भी सब वैसा ही है। कल धूप निकलने पर ही लौटना संभव हो पाएगा।

सब सो गए हैं।

किंतु मैं बाहर निकल आता हूँ।

अँधेरे में जापानी-बौद्ध विहार के श्याम वर्ण का शिखर बहुत बड़ा लग रहा है।

गन्ने के खेत!

कच्चे रास्ते !

तथागत ने अपनी इहलीला यहीं समाप्त की थी।

मुझे यहाँ किसी तरह का कोई कष्ट महसूस नहीं होता। बल्कि लगता है कि यहाँ के एकांत में किंचित शांति मिलेगी।

भिक्षु बुद्धमित्र भी गेरुए रंग का कंबल लपेटे पास आते दिखलाई देते हैं। सिंहल के विद्यालंकार विश्वविद्यालय से राहुलजी तथा कौसल्यायन जी की तरह त्रिपिटकाचार्य हैं। कहते हैं - "ह्वेनसांग ने अपने यात्रा-वृत्तांत में जिस लनमो यानी रामग्राम का वर्णन किया है। मैंने उसे खोज निकाला है ...।"

पावा नगरी कितनी दूर है ?

"यहीं पास ही। कल वह मार्ग आपको दिखलाएँगे, जिससे होकर कहा जाता है कि वे कुशीनारा आए थे।"

बुद्धमित्र चले जाते हैं, किंतु मैं उस अंधकार में खड़ा कुछ सोचता रहता हूँ।

अश्वघोष ने "बुद्धचरित" में तथागत की महायात्रा का वर्णन करते हुए लिखा है – ।

तथागत के परिनिर्वाण से शोकाकुल मल्लों में से एक वृद्ध कहता है - जिन युगचेता ने सोए मानव को जगाया, वे पश्चिम दिशा में अस्त होते हुए सूर्य की भाँति मृत्युशय्या पर पड़े हैं ... जिन्होंने अपनी ज्ञान की किरणों से विश्व का अंधकार विनष्ट किया,आह, वह बुद्धरूपी सूर्य आज अस्त हो रहा है ..!

अँधेरे में डूबे नगर में कुछ ढूँढ रहा हूँ।

इस स्थल पर आकर मुझे अजीब-सी अनुभूति हो रही है। प्रातः हिरण्यवती के उस तट पर बैठेंगे, जिसे पार कर तथागत कुशीनारा आए थे।

प्रातः कुशीनारा दर्शन के लिए निकलते हैं।

सबसे पहले पहुँचते हैं - निकट के जापानी-बौद्ध विहार। वास्तुकला का अप्रतिम उदाहरण। छोटी-छोटी ईंटों का बना वृत्ताकार

विहार। जहाँ भीतर तथागत की भव्य स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित की गई है।

श्याम वर्ण के तरुण, हँसमुख भिक्षु हलकी-सी ताली बजाकर उसकी अनुगूँज सुनाकर सबको अचरज में डाल देते हैं।

चारों ओर ईंटों की सीढ़ियाँ। खिले गुलाब। क्यारियों में नाना प्रकार के रंग-बिरंगे पुष्प महक रहे हैं।

उसी के पूर्व दिशा में प्रवाहित हो रही है हिरण्यवती!

ह्वेनसांग ने लिखा है – जहाँ बुद्ध का पार्थिव शरीर अग्नि को समर्पित किया गया था, वहाँ पूर्व की ओर कुआँ है।

हम देखते हैं वह कुआँ आज भी विद्यमान है।

ह्वेनसांग ने लिखा है – हिरण्यवती से लगभग तीन सौ कदम की दूरी पर तथागत का दाह-संस्कार हुआ था।

हिरण्यवती के तट पर खड़े होकर हम देखते हैं कि वह स्तूप ठीक उतनी ही दूरी पर स्थित है।

ह्वेनसांग ने लिखा हैं – जहाँ अग्निसंस्कार किया गया, कोयला और राख के सम्मिश्रण से भूमि अभी भी श्यामतायुक्त है।

कुछ-कुछ श्यामतायुक्त भूमि अब भी कहीं दीख रही है।

तथागत के शरीरांत के पश्चात् क्या हुआ, इसका वर्णन और भी कम मार्मिक नहीं।

"बहुमूल्य सप्त धातुओं से रथी बनाई गई। सहस्र वस्त्रों से शरीर ढका गया। सुगंधित वस्तुएँ और फूल! उन सबके ऊपर रत्नजड़ित वस्त्र और फिर स्वर्ण छत्र ! मल्ल रथी उठाकर चले हिरण्यवती के तट की ओर तो अग-जग सारा संसार सहसा रो पड़ा।"

"चंदन की विशाल चिता पर तथागत का पार्थिव शरीर सजाया गया। सुगन्धित तेल एवं घृत आदि समर्पित कर चिता की अग्नि प्रज्वलित की गई। शरीर के भस्म हो जाने के पश्चात् भी दो वस्त्र ज्यों के त्यों रहे–एक वह जो शरीर से लिपटा था, दूसरा शव से ऊपर सजाया गया था। तथागत के केश एवं नख भी अग्नि से नहीं जले।"

ईंटों का बना विशाल स्तूप आज भी अतीत का साक्षी है।

यह भी लिखा है, ह्वेनसांग ने कि बुद्ध के अवशेषों के लिए मल्ल तथा अन्य गणराज्यों के बीच भारी विवाद उठ खड़ा हुआ। अंत में अवशेष आठ भागों में विभाजित कर दिए...।

हिरण्यवती तब से अब तक उसी तरह प्रवाहित हो रही है। अब उतना जल नहीं। एक क्षीण धार कूल-कगारों को खींचती हुई, मौन मंथर गति से बढ़ रही है ...

स्तूप की परिक्रमा के पश्चात् हम लौटने लगते हैं।

पास ही किसानों की झोपड़ियाँ।

आँगन में बँधे बछड़े।

एक कतार की शक्ल में ग्रामीण महिलाएँ, रोटी की पिटारियाँ सिर पर रखे, तेज गति से नदी की दिशा में बढ़ रही हैं।

जहाँ कभी शाल वन थे, वहाँ खेत हैं। फसल लहलहा रही है झोपड़ियों से धुआँ उठ रहा है। अधनंगे बच्चे चहक रहे हैं धूल में।

इन सबके भीतर कहीं छिपे, ढाई हजार साल पुराने कुशीनगर को खोज रहा हूँ, शायद कोई वृद्ध मिले, कहे-तथागत को नदी पार कर शाल-वन में आते मैंने देखा था रात्रि के पश्चिम याम में उन्होंने देह का परित्याग मेरे सामने किया था ...।

प्रश्न-अभ्यास

1. कुशीनगर के वृत्त-चित्र में लेखक को एक जीवंत कविता का अहसास क्यों हुआ?
2. तथागत के अंतिम दिन साधारण मनुष्य के अंतिम दिनों से किस प्रकार भिन्न थे ?
3. नालंदा को अद्वितीय शिक्षा-तीर्थ क्यों कहा गया है ?
4. अंतिम उपदेश देने का आनंद का अनुरोध तथागत को क्यों चुभा ?
5. चुंद के घर भोजन करने से अस्वस्थ होने पर भी तथागत ने चुंद को निर्दोष बतलाया। इससे उनके स्वभाव की किस विशेषता का पता चलता है ?
   (क) उनके दूरद्रष्टा होने की।
   (ख) विवेकशीलता की।
   (ग) स्नेह का सम्मान देने की।
   (घ) पापी से घृणा न करने की प्रवृति की।
6. निम्नलिखित पंक्तियों की व्याख्या कीजिए:
   (क) अपना दीपक स्वयं बनना है।

(ख) विश्व में विवेकशील वही है जो तत्वतः अर्थग्रहण करता है।

(ग) जिनका हृदय पावन है उन्हीं के आप्त वचन का अनुशीलन करना चाहिए।

7. इस निबंध की भाषा-शैली में सजीवता और नाटकीयता है तथा छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है, सोदाहरण इस कथन की पुष्टि कीजिए।

8. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :

(क) फाहियान (ख) ह्वेनसांग (ग) अश्वघोष

9. निर्देशानुसार उत्तर दीजिए :

(क) धरती के भीतर से झाँकती सिल्लियों की तरह बिछी लंबी पाषाण शिलाओं पर छात्र सोया करते थे।

(पदबंध छाँटिए और उसका प्रकार बताइए)

(ख) उस क्षण कहीं यह भी लगता रहा कि जैसे मैंने ही वर्षों तक इन शिलाओं पर बैठ कर बौद्ध-वाङ्मय का पारायण किया था।

(उपवाक्य छाँटिए और प्रकार बताइए)

(ग) उरबेला देखने की, जहाँ तथागत ने तपस्या की थी, आकांक्षा पूरी न हो पाई थी।

(साधारण वाक्य में रूपांतरित कीजिए।)

(घ) बुद्ध अपनी पलकें मूँद कर ध्यान में लीन हो गए थे।

(संयुक्त वाक्य में रूपांतरित कीजिए।)

10. बुद्ध के जीवन से संबंधित प्रमुख स्थानों की एक सूची बनाइए और उन्हें भारत के मानचित्र में दर्शाइए।

फाहियान – चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल में फाहियान – चीनी यात्री भारत आये यहाँ [illegible] वर्ष रहे (405–411 AD)
His writings throw much light on the Hindu civilization of those days
His object was to visit the holy places of Buddhism and to collect Buddhist sacred books.

ह्वेनसांग – Chinese Pilgrim. Learned scholar of Buddhism. He came to India during the reign of Harsha in search of Buddhist Scriptures and lived here for about 15 years (630 – 645 AD). He travelled all over the country. Spent some years in the

हर्षवर्धन (606 A.D – 647 A.D)

शब्दार्थ एवं टिप्पणियाँ

बातचीत

अविकल	:	ज्यों का त्यों
लुंज-पुंज	:	हाथ-पैर रहित
पुलपिट (अं)	:	भाषण मंच
पुण्याह वाचन	:	धार्मिक कार्य के प्रारंभ में पुरोहित द्वारा कल्याण-कामना के वचन
नांदी पाठ	:	मंगलात्मक श्लोक
साहबाने मजलिस	:	सभा में उपस्थित सज्जन
चुटीली	:	हृदय को छूने वाली
खामखाह	:	ख़्वाहमख़्वाह, बेकार चाहे या चाहे बिना
करतल ध्वनि	:	तालियों की गड़गड़ाहट
संलाप	:	बात, वार्तालाप
संजीदगी	:	गंभीरता
बेकदर	:	जिसकी कोई इज्जत न हो
लत	:	आदत
फ्राइडे	:	रॉबिनसन क्रूसो को एकांत द्वीप पर साथी के रूप में मिला एकमात्र जंगल-निवासी। शुक्रवार (फ्राइडे) को मिलने के कारण क्रूसो ने इसका नाम फ्राइडे रख दिया था।
साक्षात्कार	:	आमना-सामना, प्रत्यक्ष-दर्शन
आभ्यांतरिक	:	मन का, भीतर का
जमात	:	समूह
हिजाब	:	शर्म
निरस्त	:	विरक्त

निपट	:	एकदम
मनोवृत्ति	:	मन की अवस्था
प्रसरण	:	फैलाव
बेतकल्लुफ़ी	:	बिना संकोच
राम रमौवल	:	हाल-चाल पूछना
दास्तान	:	कहानी, विवरण
फार्मेलिटी(अं.)	:	औपचारिकता
प्रकरण	:	विषय
तर्ज़	:	अंदाज़, ढंग
लियाकत	:	योग्यता
हम चुनीं दीगरे नेस्त	:	हम श्रेष्ठ हैं, दूसरे कुछ नहीं
अर्द्धजरती	:	ढलती उम्र, अधेड़
गिला-शिकवा	:	उलाहने और शिकायत
रामरसरा	:	विस्तृत वृत्तांत
खोढ़ा	:	खोखला
कैफ़ियत	:	महत्त्व
बोदा	:	दब्बू, मोटी अक्ल का
बतकही	:	बातचीत
बिचवई	:	बिचौला,मध्यस्थ
अमुक	:	कोई, किसी
चंडू	:	एक प्रकार की अफ़ीम
हुनर	:	निपुणता, खूबी
सहृदय-गोष्ठी	:	रस का अनुभव करने वाले व्यक्तियों की सभा
रसाभास	:	रस का अनुचित प्रकरण या स्थान पर वर्णन
बरकाना	:	पीछा छुड़ाना
सारगर्भित	:	तत्त्वपूर्ण
दूरंदेश	:	दूर की बात सोचने वाला
फ़रीक	:	पक्ष
सर्फ़राज़	:	लाभान्वित, कृतार्थ
दिलजोई	:	तसल्ली
माफ़िक	:	अनुसार
प्रपंचात्मक	:	छलयुक्त
दुर्घट	:	कठिन
कतरनी	:	कैंची
यावत्	:	सभी, जहाँ तक

परमार्थ : मोक्ष, ब्रह्म, यथार्थ-तत्त्व
सोपान : सीढ़ी
रॉबिनसन क्रूसो : डेनियल डिफो (सन् 1660-1731ई.) नामक अंग्रेज लेखक की पुस्तक का नायक ।
शेक्सपियर : (सन् 1564-1616 ई.) विश्व विख्यात अंग्रेज कवि और नाटककार।
मिल्टन : (सन् 1608-1674 ई.) "पैराडाइज़ लॉस्ट" महाकाव्य का रचयिता एक अंग्रेज़ कवि
स्पेंसर : प्रख्यात अंग्रेज दार्शनिक

विश्व-मंदिर

घटघट व्यापी : सभी प्राणियों में विद्यमान, सर्वत्र व्याप्त
ज़र्रा : कण
मज़हबी तअस्सुब : धार्मिक कट्टरता
समन्वय : विभिन्न मतों या विचारों के अच्छे कल्याणकारी तत्त्वों का सामंजस्य
लामकाँ : (ला+मकान) जिसका कोई मकान न हो, अर्थात् जो सर्वव्यापी हो, ईश्वर
पसार : प्रसार, फैलाव
नूर : प्रकाश
अनीश्वरता : (अन्+ईश्वरता) ईश्वर को न मानना।
रुचि वैचित्र : रुचि की विचित्रता या भिन्नता
अनासक्ति योग : (अन्+आसक्ति योग) आसक्ति न रखकर कर्म करने की साधना
ईसा : ईसाई मत के प्रवर्तक ईसा मसीह
मंसूर : नवीं शताब्दी के एक सूफी संत जो "अनहलक" (मैं ही ईश्वर हूँ) कहा करते थे और इसी कारण खलीफ़ा के आदेश से उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया था ।
काबा : मक्का की एक पवित्र चौकोर इमारत
गुह : शृंगवेरपुर का निषादराज जिसने वन-गमन के समय राम को गंगा पार कराया था ।
चरणोदक : वह जल जिसमें किसी देवमूर्ति या पूज्य पुरुष के पाँव पखारे गए हो, चरणामृत

येरुसलम	:	इसराइल स्थित ईसाइयों, यहूदियों का पवित्र तीर्थ स्थान
स्तूप	:	महात्मा बुद्ध के अवशेष रखने के लिये बौद्धों द्वारा बनाए गए ईंटों के विशाल सुडौल ढूह ।
औलिया	:	(वली का बहुवचन) सिद्ध मुसलमान संत
अवेस्ता	:	पारसियों का मूल धर्म ग्रंथ
आयत	:	कुरान शरीफ के वाक्य
सुक्त	:	सुत्त पिटक नामक बौद्ध ग्रंथ
इंजील	:	ईसाइयों की धर्म पुस्तक
कन्फ़्यूशियस	:	चीन के प्राचीन धर्म का प्रचारक एवं दार्शनिक
सिरजनहार	:	सृष्टि का रचने वाला, ईश्वर
खूँरेजी	:	खून खराबा

कोटर और कुटीर

निस्पंद	:	बिना हरकत, बिना हिले डुले
स्निग्ध	:	चिकना
गोत्र	:	कुल
अश्रव्य	:	न सुनने योग्य
परिखा	:	खाई, दीवार
यंत्रणा	:	पीड़ा
पोखरी	:	छोटा तालाब
अंजुल	:	दोनों हाथ की हथेली
जीर्ण-शीर्ण	:	टूटी-फूटी
साध	:	इच्छा
दत्तक	:	गोद लिया पुत्र, एक वस्तु के न होने पर उसके स्थान पर दूसरी वस्तु का प्रयोग
पक्षाघात	:	लकवा, एक ऐसा रोग जिसमें शरीर का दायाँ या बायाँ अंग बेकार हो जाता है ।
अवशिष्ट	:	बाकी, शेष, बचा हुआ
अकाट्य	:	जिसे काटा न जा सके
प्रकृतिस्थ	:	सहज होकर
आनंदातिरेक	:	आनंद की अधिकता

कंठावरोध : गला भर आना
क्षुधा : भूख
निहाल : प्रसन्न, धन्य

मैं और मेरा देश

भौंचक : चकित, हैरान
बवंडर : तेज आँधी
झकझोरा : तेज झोंका, झकझोरना, हिला देना
बखेरना : फैलाना
ठसक : ऐंठ, शान
कसक : रह-रह कर होने वाली पीड़ा
रसद : सेना के लिए खाद्य-सामग्री
मुशायरा : उर्दू कवि सम्मेलन
छूमंतर : ग़ायब
बरामद : प्राप्त
दस्तखत : हस्ताक्षर
कसौटी : वह पत्थर जिसपर घिस कर सोना परखा जाता है, मापदंड
हुंकार : गर्जना
अजेयता : न जीता जा सकना
तरेड़ : दरार
ठेलमठेल : धक्कम-धक्का
उत्तेजक : भड़काने वाला
भामाशाह : एक धनी सेठ जिसने अपनी सारी संपत्ति महाराणा प्रताप की विपत्ति में उन्हें सौंप दी

स्वामी विवेकानंद

उद्घोष : गर्जन
पिपासा : प्यास
संशयात्मा : अविश्वासी, संदेहशील

उच्चाकांक्षिणी	: बड़प्पन की कामना करने वाली
शाश्वत	: चिरस्थायी
विपदग्रस्त	: संकट या मुसीबत में फँसा हुआ
अस्तित्व	: हस्ती, विद्यमान होने का भाव
जड़वादी	: चेतन आत्मा का अस्तित्व न मानने वाला
तनिक	: थोड़ा
भावावेश	: भाव की तीव्रता
निचोड़	: सार
अगोचर	: न दिखाई देने वाला
छिन्न	: टूटना, भंग
ख्याति	: प्रसिद्धि
अध्यवसाय	: उद्यम
अभ्यर्थना	: प्रार्थना, विनती
विश्ववंद्य	: संसार द्वारा पूजने योग्य
निवृत्त	: निबटना, पूरा या समाप्त कर
तल्लीन	: डूबा हुआ
तिरस्कीकरण	: अनादर करना
हिंडोला	: झूला
आश्वासन	: तसल्ली

भारतीय संस्कृति

भू गर्भ	: भूमि के भीतर
उद्गम	: उत्पत्ति, स्रोत
आध्यात्मिक	: परमात्मा या आत्मा से संबंधित
मज्जा	: हड्डियों के भीतर भरा चिकना पदार्थ
मृतप्राय	: मरा हुआ-सा
ओत-प्रोत	: भरा हुआ
स्वच्छंदतापूर्वक	: बेरोक-टोक
उद्दंड	: नियंत्रणहीन
आक्रांत	: पराजित
स्वत्व	: अधिकार, अपनापन
उपार्जन	: कमाना

अंकुश	:	नियंत्रण, पाबंदी
परिमित	:	सीमित
थपेड़ा	:	आघात, चोट
मनीषी	:	चिंतक, विचारशील, विद्वान्
तकाज़ा	:	माँग, इच्छा
प्लावित	:	सींची गई
प्रकांड	:	महान्
प्रगाढ़	:	गहरा
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः	:	त्याग युक्त उपभोग
सौहार्द	:	परस्पर सद्भाव
पद-दलित	:	पैरों तले कुचला हुआ
सृजनात्मक शक्ति	:	नया रचने की शक्ति

गौरा

वयः संधि	:	युवावस्था के निकट, बाल्य और तारुण्य के बीच की अवस्था
गोवत्सा	:	बछिया
कुक्कुट	:	मुर्गा
चामर	:	चँवर
परिचारक	:	सेवक
आकुलता	:	चिंता
वत्स	:	पुत्र
वलय	:	घेरा
अलंकृत	:	सज्जित
व्याधि	:	कष्ट
आसन्न	:	निकट
पयस्विनी	:	दुधारू, दूध देने वाली
निरुपाय	:	असहाय
निष्प्रभ	:	चमक रहित
संक्रामक रोग	:	छूत आदि से फैलने वाले रोग
इटैलियन	:	इटली देश का
बिल्लौरी	:	बिल्लौर (पारदर्शक) पत्थर की सी चमक वाली

तरल : चपल, प्रवाहशील
यातना : अति कष्ट, पीड़ा
निर्मम : ममतारहित, निष्ठुर
अलस : थकी हुई सी
मंथर : धीमी
वृंत्त : डाल

कलेण्डर कलाकार

स्तंभकार : पत्र पत्रिकाओं में विशेष लेख या टिप्पणी लिखने वाला, कॉलमनिस्ट
स्फूर्ति : उमंग, जोश
फरेब : धोखाधड़ी
धर्मपरायण : धार्मिक, धर्म में रत
पतन : गिरावट
विरुदावली : यशोगान, कीर्तिगान
छिटपुट : कभी, यदा-कदा

सिक्का बदल गया

कगार : नदी का किनारा
पौ फटना : प्रातः काल का प्रकाश दिखाई देना
बरकत : देन
शटाला : पशुओं को खिलाया जाने वाला हरा चारा ।
मुँह अँधेरे : सुबह-सुबह, प्रातःकाल
जिगरा करना : धैर्य करना
प्रतिहिंसा : बदला
मशवरा : सलाह, राय
शंकित : डरा हुआ
ड्योढी : दहलीज, चौखट का निचला भाग
विकृत कंठ : भावाविष्ट स्वर, भर्राई हुई आवाज़
असामी : कर्जदार, काश्तकार
मसीत : मस्जिद

खेमा : तंबू
अस्फुट : अप्रकट

ठूँठा आम

जनसंकुल : भीड़भरा
छतनार : छायादार
निस्पंद : धड़कन रहित, शांत
अविरल : लगातार
संसृति : सृष्टि
बियाबाँ : उजाड़खंड
परिकर : पगड़ी
निदाघ : गरमी
अभिराम : सुंदर
ऊर्जस्वित : शक्ति से संपन्न
निरभिलाष : बिना किसी इच्छा के
व्यंजित शिरा : झलकती रक्तवाहिका नाड़ी
उद्वेलित : उछलती
संज्ञा : नाम, चेतना, होश
पनाह : शरण, आश्रय
प्रतान : फैलाव, विस्तार
स्कंद देश : पेड़ के तने का मोटी डाल का भाग
ठमक : सहसा रुक जाने का भाव
व्यवधान : बाधा
वृत्त : चक्र
तारुण्य : जवानी, युवावस्था
निरालस : आलस्य रहित
डहकती : फैलती हुई, विस्तृत
अँगड़ाना : अँगड़ाई लेना

कुशीनारा : तथागत के अंतिम दिन

तथागत	:	गौतम बुद्ध
अवशेष	:	विनाश से बचे हुए हिस्से, जलाने के बाद मृत शरीर का शेष अंश
निर्देशन	:	मार्ग-दर्शन
वृत्ताकार	:	गोलाकार
परिनिर्वाण	:	मोक्ष
सिल्ली	:	पत्थर की पटिया
मेधावी	:	बुद्धिमान्
वाङ्.मय	:	साहित्य, ग्रंथ
पीत	:	पीला
चीवर	:	बौद्ध भिक्षुओं का ऊपरी वस्त्र
व्याधि	:	रोग, पीड़ा
किंचित्	:	कुछ
भ्रामक	:	बहकाने वाला
जीर्ण	:	जर्जर, फटा-पुराना
जरा	:	बुढ़ापा
अम्लान	:	प्रफुल्ल, प्रसन्न
अभीष्ट	:	अपेक्षित
आप्त	:	प्रामाणिक
अनुशीलन	:	निरंतर तथा गंभीर अभ्यास
तंद्रा	:	नींद
कुहासा	:	कुहरा
प्रांगण	:	आँगन
अनुगूँज	:	प्रतिध्वनि
पार्थिव	:	पृथ्वी से उत्पन्न, मिट्टी का बना
अतिसार	:	संग्रहणी रोग, पेचिश
इहलीला	:	सांसारिक जीवन, वर्तमान जीवन
अप्रतिम	:	अनुपम, बेजोड़
पश्चिम याम	:	पिछला पहर